द्वितीय अध्याय

ठुमरी की उत्पत्ति, विकास एवं प्रवर्तमान स्थिति

द्वितीय अध्याय
ठुमरी की उत्पत्ति, विकास एवं वर्तमान स्थिति

कला परिवर्तनशील है, चाहे वह लोक कला हो या ललित कला | किसी भी कला विधा को सम्पूर्ण रूप से समझने के लिए और उसका विवेचन तथा विश्लेषण करने के लिए उसके इतिहास को जानने से बहुत सहायता होती है | इतिहास में कला का उद्गम/उत्पत्ति, विकास , उसके रूप में आये हुए परिवर्तन, उसके भौगोलिक,सामाजिक, राजनैतिक परिबल आदि चीज़ें समाविष्ट हो सकती हैं | समयानुसार परिवर्तन होते होते कला के कुछ रूप और शैलियाँ अभ्यास के काल तक प्रचलित रहते हैं और कुछ अस्तित्व खो चुके होते हैं |
प्रवर्तमान समय में ठुमरी एक उपशास्त्रीय विधा के रूप में लोकप्रियता बनाए हुए है | इसमें भी बोल-विस्तार, स्वर का लगाव, अलंकरण की पद्धतियाँ, एकंदर प्रस्तुतिकरण की गति और प्रादेशिकता का प्रभाव जैसी विशेषताओं के कारण अलग-अलग प्रकारों का अस्तित्व देखने को मिलता है | ठुमरी के पूर्ववर्ती रूप, उनसे ठुमरी का उद्गम एवं विकास तथा ठुमरी के मूल रूपों से आधुनिक रूप और प्रकारों में परिवर्तन का अभ्यास इस अध्याय में किया गया है |

2.1 ठुमरी की उत्पत्ति

ठुमरी की उत्पत्ति के बारे में जो भी शोध कार्य हुआ है उस में अलग-अलग लोगों के अलग-अलग मत सामने आते हैं | उन मतों का यहाँ विचार किया गया है |

2.1.1 अवध के नवाब वाजिद अली शाह से संबंधित मत

बहुत से संगीतज्ञों तथा ज्यादातर लोगों की यह धारणा है की ठुमरी का आविष्कार उन्नीसवी शताब्दी के अवध प्रान्त के शासक नवाब वाजिद अली शाह के लखनऊ दरबार में हुआ |[22] कुछ के हिसाब से तो स्वयं वाजिद अली

[22] श्रीमती सुचरिता गुप्ता इनसे इनके निवासस्थान पर हुई प्रत्यक्ष बातचीत के आधार पर. दिनांक:09/10/2018 वाराणसी, उत्तर प्रदेश.; श्रीवास्तव ह. (2018). *राग परिचय भाग 2.* ईलाहाबाद, उत्तर प्रदेश : संगीत सदन प्रकाशन. पृष्ठ 199.

शाह ही ठुमरी के आविष्कर्ता थे | इस मत के निर्माण के पीछे यह तथ्य कारणरूप लगता है की वाजिद अली शाह का और उनके दरबार के संगीतज्ञों का ठुमरी के इतिहास में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है |

नवाब वाजिद अली शाह का जन्म ई.स. 1822 में और मृत्यु ई.स. 1887 में हुआ था | अवध पर इनका शासन ई.स. 1847 से ई.स 1856 तक रहा | बाद में इन्हें अंग्रेजों द्वारा अवध से जबरदस्ती हटाकर मटियाबुर्ज़, कलकत्ता में नज़रकैद रखा गया, जहाँ इनकी मृत्यु हुई |

लखनऊ दरबार में ठुमरी के शुरूआती विकास के लिए जिस प्रकार के पोषक वातावरण की आवश्यकता थी वह उसे विपुलता में मिला | स्वतः वाजिद अली शाह उर्दू और फारसी के अच्छे जानकार एवं शायर थे और प्रांतीय बोली ब्रज भाषा भी जानते थे| 'अख्तर पिया'/ 'अख्तर' उपनाम से कई काव्य और संगीत रचनाएँ रचीं थीं | दरबार के प्रसिद्ध नर्तक ठाकुर प्रसादजी से कत्थक नृत्य सिखा | उनके राज्य में लखनऊ में संगीत, नृत्य और उर्दू नाट्य का खूब विकास हुआ,जिसमें ठुमरी के वे बड़े संरक्षक बने |हा हकीम मुहम्मद करम इमाम के अनुसार संगीत की प्रत्येक कला पर वाजिद अली शाह का प्रभुत्व था और उनके शासनकाल दौरान लखनऊ संगीतादि कलाओं के उत्तम विद्वान कलाकारों का घर था | [23] इन सब वजहों से यह धारणा बन गई की ठुमरी का आविष्कार अवध के नवाब वाजिद अली शाह के लखनऊ दरबार में हुआ |

2.1.2 राजा मानसिंह तोमर से सम्बंधित मान्यता [24]

एक मान्यता के अनुसार, राजा मानसिंह तोमर द्वारा अनायास ही इस प्रकार का आविष्कार हुआ | किम्वदंती के अनुसार, ध्रुपद के कलाकार राजा मानसिंह तोमर एक बार राग भैरवी गा रहे थे और अनायास ही शुद्ध स्वर रिषभ लग गया | इससे राग अशुद्ध तो हो गया लेकिन स्वरों के सन्दर्भ में यह कर्णप्रिय और रंजक लग रहा था | इस परिणाम से उत्साहित होकर भैरवी में अन्यान्य विवादी स्वरों के का प्रयोग किया एवं अन्य कुछ रागों एं भी ऐसा प्रयोग किया | ऐसे रागों के नामके आगे 'तोमरी' शब्द –विशेषण लगा दिया, जैसे तोमरी भैरवी, तोमरी खमाज और कालक्रम में 'तोमरी' शब्द बदल कर 'ठुमरी' हो गया | श्रीमती भारती राठोड ने अपनी पुस्तक में इस मान्यता का उल्लेख कर के यह भी कहा है की यह धारणा भ्रममूलक प्रतीत होती है, क्योंकि राजा मानसिंह तोमर के काल में ध्रुपद गायकी प्रचार में थी और परवर्ती सत्रहवीं सदी तक के ग्रंथों में वर्णित भैरवी का रूप

---

[23] शुक्ल श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम निदेशालय कार्यन्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ 48.

[24] राठोड भा. (2005). *शास्त्रीय संगीत की मधुरिमा: ठुमरी.* जयपुर, राजस्थान: यूनिवर्सिटी बुक हाऊस (प्रा..) लि. पृष्ठ 52.

शुद्ध रिषभ वाला ही था जो की आज के नटभैरव राग जैसा है | इसका अर्थ यह है की उस समय शुद्ध रिषभ विवादी स्वर था ही नहीं | [25] इस तर्क से शोधकर्ता सहमत है और इस मत को आधारभूत नहीं मान सकते |

2.1.3 उस्ताद सादिक अली खाँ से सम्बन्धित मत

डॉ. सुशिल कुमार चौबे के अनुसार, उस्ताद सादिक अली खाँ ठुमरी के आविष्कर्ता थे | उस्ताद सादिक अली खाँ कव्वाल बच्चे घराने के सुप्रसिद्ध प्रतिभाशाली गायक कलाकार थे | नवाब वाजिद अली के समय में ये दरबार संगीत से सम्बंधित थे | और उनके बाद भी ये लखनऊ में मौजूद थे | ठुमरी के प्रमुख उन्नायकों में इनका नाम लिया जाता है | ठुमरी को एक सुकुमार सुव्यवस्थित गायन शैली के रूप में विकास होने के लिए लखनऊ दरबार और सादिक अली खाँ ही कारण हैं ऐसा श्री चौबे का मत है | [26]

उपरोक्त मत (1) वाजिद अली शाह और मत (3) सादिक अली खाँ को खंडित करते हुए श्री चंद्रशेखर पन्त इस बात का उल्लेख करते हैं कि ई.स. 1834 में कैप्टन एन. ऑगस्टस विलर्ड द्वारा प्रसिद्ध दस्तावेज़ पुस्तक 'A Treaties on the Music of Hindustaan' में ठुमरी को 'ब्रजभाषा की मिश्रित बोली' का गीत बताया गया है | [27] अगर मत क्र. (1) और मत क्र. (3) जैसी स्थिति होती तो 1834 में प्रसिद्ध हुए दस्तावेज में ठुमरी का इतना स्पष्ट उल्लेख मिलना थोडा अजीब लगता है | क्योंकि अगर वाजिद अली शाह, जिनका जन्म ही ई.स. 1822 में हुआ था, ने ठुमरी को आविष्कृत किया होता तो उसका अस्तित्व 1834 में इतना उल्लेखनीय और प्रचलित कैसे होता ? इसी की तरह अगर सादिक अली खाँ , जन्म ई. स. 1800, ने ठुमरी को आविष्कृत किया होता तो भी इतने अल्प अवधि में ठुमरी का परिपक्क होकर दरबार के संगीत में प्रचलित होना कुछ अशक्य सा लगता है | उन्नीसवीं शताब्दी से पहले के समय में, तेज़ आवागमन और संदेश-वहन की सुविधाओं के अभाव में, कला के परिपक्क रूप को विकसित होकर लोक में प्रचलित होने के लिए तथा शिष्ट वर्ग (जैसे की तत्कालीन दरबार) सम्मत रूप ग्रहण करने के लिए साधारणत: तीस से चालीस वर्ष का समय तो लगता ही होगा | इस तर्क के आधार पर श्री चंद्रशेखर पन्त की यह शंका कि ठुमरी का आविष्कार वाजिद अली शाह या सादिक अली खाँ ने नहीं किया लेकिन उससे भी पहले ही ठुमरी की उत्पत्ति हो चुकी थी, ठीक लगती है और शोधकर्ता इससे सहमत है |

---

[25] राठोड भा. (2005). *शास्त्रीय संगीत की मधुरिमा: ठुमरी.* जयपुर, राजस्थान: यूनिवर्सिटी बुक हाऊस (प्रा..) लि. पृष्ठ 53

[26] Chaubey, S. K. (1957). The Lukhnow Thumri. *Uttar Pradesh,* December. P.27.

[27] शुक्ल श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम निदेशालय कार्यन्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ 49

इसके अतिरिक्त ई.स. 1792 में मीर सबीर अली शाह कृत फ़ारसी 'उसूलुन्नग़मात-अल-आसफ़िया' में तथा ई.स. 1885 में हकीम मुहम्मद करम इमाम कृत 'माद्नूल-मूसीक़ी' नामक ग्रन्थ में नवाब आसफ़ुद्दौला के समकालीन ग़ुलाम रज़ा द्वारा आविष्कृत सितार के बाज़ का उल्लेख है, जो की मूलत: त्रिताल मध्यलय की ठुमरियों पर आधारित था |[28] इससे यह सिद्ध होता है नवाब आसफुद्दौला के समय- ई.स. 1775-ई.स. 1797- भी लखनऊ दरबार एवं समाज के उच्च वर्ग में ठुमरी की कला जानी-पहचानी थी |

2.1.4 ग़ुलाम नबी – शौरी मियाँ से सम्बन्धित मत

ई.स. 1885 में प्रकाशित श्री कृष्णधन बनर्जी लिखित बंगला भाषा के ग्रन्थ 'गीतसूत्रसार' में ऐसा उल्लेख है कि श्री क्षेत्रमोहन गोस्वामी ने 'संगीतसार' नामक ग्रन्थ में लखनऊ के गुलाम नबी उपनाम 'शौरी मियाँ' को ठुमरी के आविष्कर्ता कहा है |[29] किन्तु इस मत के समर्थन में इतरत्र कहीं भी अन्य आधार नहीं मिलते हैं | वास्तविक इनका सम्बन्ध ठुमरी से न होकर टप्पा से है और रचना, भाषा-साहित्य, गायकी आदि की तुलना करें तो टप्पा और ठुमरी एक-दुसरे से बहुत भिन्न शैलियाँ हैं | इसलिए इस मत को भी आधारभूत नहीं माना जाता |

उपरोक्त मत क्र. (1), (3), (4) के बारे में विचार करें तो ये तीनों मत अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी के लखनऊ दरबार से सम्बंधित हैं | वाजिद अली शाह स्वयं ही शासक थे जबकि सादिक अली खाँ और गुलाम नबी शौरिमियाँ लखनऊ दरबार में कला प्रस्तुत करनेवाले प्रतिष्ठित कलाकार | इन मतों से इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि ठुमरी के विकास में लखनऊ दरबार की भूमिका बड़ी अहम रही है | नवाब आसफुद्दौला के समय तक ठुमरी अपने शिष्ट रूप में दरबार में प्रस्तुत होने लगी थी | फिर भी ठुमरी के सम्बन्ध में कुछ ऐसे उल्लेख ऐतिहासिक दस्तावेजों में और पुस्तक-ग्रंथों में मिलते हैं जिनके आधार पर श्री शत्रुघ्न शुक्ल कहते हैं कि ठुमरी का अस्तित्व लखनऊ दरबार से बहुत पहले के समय से समाज में था और वह प्रचलन में भी थी |

* **जोधपुर के महाराजा मानसिंह उपनाम 'रसराज'** (राज्यकाल ई.स._1803-1843) द्वारा रची गयी ठुमरी का एक उदाहरण :

राग कालिंगडो ठुमरी, आड़ो तितालो

अलबेले चंपा चीर में | असताई

बिजली सी चमके पियारी जी ॠ,

---

[28] शुक्ल श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम निदेशालय कार्यन्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ 51

[29] शुक्ल श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम निदेशालय कार्यन्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ 52

पियरी घटा की भीर में |[30]

* **किशनगढ़ के महाराज जवानसिंह उपनाम 'ब्रिजराज' और 'नगधर'** (राज्याभिषेक ई.स._1828) कृत ठुमरी का एक उदाहरण :

बटमारो तेरो मोहना री, मेरो गाँव लूटै माँ |

मोरे पास अछे अछे साल दुसाले, कर भर दीने

तौ हूँ गैल नाहिं छूटै माँ |[31]

* ई. स. 1779 और ई. स. 1803 के बीच में जयपुर के महाराजा सवाई प्रतापसिंह के संरक्षण में **'श्री राधागोविंद संगीतसार'** नामक बृहत् ग्रन्थ की रचना हुई जिसमें ठुमरी को विशिष्ट गीतविधा न कहकर एक राग विशेष के रूप में वर्णन किया गया है | [32]

* मुग़ल बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले के राज्य काल ई.स.1719 से 1749 में उनके द्वारा बनाई हुई एक कृति ठुमरी के रूप में मिलती है :

मुल्तानी-ठुमरी-तिताल

अब तो नेह नजर हो रखो इ बने प्यारे |

तुम्हारी दया ते जग जीवत नित;

महम्मद सा रंगीले लाल सबको सुख देत न्यारे || [33]

* ई. स. 1675 के आसपास **मिर्ज़ा खाँ इब्नेफ़खरूद्दीन** रचित फ़ारसी ग्रन्थ **'तोहफ़त-उल- हिन्द'** में ठुमरी का उल्लेख किया है | [34] इसमें बताया गया है की भरत मत के अनुसार श्री राग की तीसरी रागिनी ठुमरी है और वह पूरब की और ज्यादा गाई जाती है | उसमें 'मारू' और 'शंकराभरण' रागों का मिश्रण है | अन्य एक रागिनी पहाड़ी में भी मारू और शंकराभरण का मिश्रण बताया गया है | अर्थात् ठुमरी और पहाड़ी के निर्माण तत्त्व एक

---

[30] शुक्ल श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम निदेशालय कार्यन्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ 50

[31] शुक्ल श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम निदेशालय कार्यन्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ 50

[32] शुक्ल श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम निदेशालय कार्यन्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ 55

[33] शुक्ल श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम निदेशालय कार्यन्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ 55

[34] शुक्ल श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम निदेशालय कार्यन्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ 58

ही हैं | इस ग्रन्थ में काफी की गणना भी श्री राग की एक प्रमुख रागिनी के रूप में हुई है जिसमें शंकराभरण और गौरी का मिश्रण है | मारू राग का निर्माण गौरी, परज और सोरठ के मिश्रण से बताया गया है | इन सब बातों से यह कह सकते है कि तत्कालीन ठुमरी और काफी रागिनियों में बहुत प्रमाण में साम्य दिखाई देता होगा |

* ई.स. 1665 के करीब, औरंगजेब के राज्यकाल में, कश्मीर के सूबेदार **फ़क़ीरूल्लाह** ने **'मान कुतूहल'** का फारसी में अनुवाद करकर **'राग दर्पण'** की रचना की | उसमें दसवें अध्याय में उल्लेख मिलता है की तत्कालीन लोग बरव: धुन को 'बरवा' कहते थे और कुछ लोग इसी को 'ठुमरी' भी कहते थे | [35] इस से यह सिद्ध होता है की उस समय तक जनसामान्य में बरवा धुन के नाम से ठुमरी गाने का प्रचार हो गया था |

ठुमरी के सम्बन्ध में सबसे पुराना लिखित उल्लेख या प्रमाण इसी 'राग दर्पण' में मिलता है, जिसमें 'ठुमरी' इस विशिष्ट नाम से किसी धुन, राग या गीतविधा को जाना गया हो | ई.स. की सत्रहवीं शताब्दी (1600-1699) के पहले के किसी दस्तावेज़ में ठुमरी का विशेष उल्लेख नहीं मिलता |

इस प्रकार 'राग दर्पण' के काल तक ठुमरी संगीत का विशिष्ट प्रकार या धुन के रूप में तत्कालीन लोक-समाज में प्रस्थापित हो चुकी थी | 'तोह्फ़त-उल-हिन्द' के वर्णन से पता चलता है कि तत्कालीन ठुमरी नामक रागिनी या उसकी धुनों का स्वरुप वर्तमान ठुमरी के रागों से साम्य रखते थे |

तत्कालीन शासकों के दरबार में ठुमरी-गायन के कोई प्रमाण नहीं मिलते जबकि ध्रुवपद-धमार प्रस्तुति के प्रमाण मिलते हैं | साथ में यह भी उल्लेख है की उस समय पूरब अर्थात् दिल्ली से पूर्व की और के क्षेत्र में ठुमरी गाये जाने का अधिक प्रचार था |

2.1.5 श्री शत्रुघ्न शुक्ल जी का मत

श्री शत्रुघ्न शुक्ल जी ने उत्तर भारत के ब्रजप्रदेश के लोक संगीत के **चाँचर**, **होली**, **रास** आदि गीतों की परंपरा मध्ययुगीन '**चर्चरी**' प्रबंध से एवं उसके क्रमिक विकास के द्वारा बताई है | इसी '**चर्चरी**' की परंपरा से **ठुमरी** को जोड़ते हुए कुछ प्रमाण उन्होंने अपनी पुस्तक 'ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ' में दिए हैं, जिसका सार इस प्रकार है :

'राग-दर्पण' में मिलनेवाले 'ठुमरी' के वर्णन से यह **अनुमान** हो सकता है कि उस काल तक 'ठुमरी' किसी रागिनी या धून के रूप में समाज में ज्ञात थी | उसके रागों के वर्णन से पता चलता है कि वर्तमान ठुमरी के रागों से वे साम्य रखते हैं | इनमें से अधिकांश रागों का विकास लोकधुनों से हुआ है जिनमें से बरवा और पहाडी को

---

[35]शुक्ल श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम निदेशालय कार्यन्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ 58

सत्रहवीं शताब्दी में 'ठुमरी' के रूपमें गाने का खूब रिवाज़ था | इसी प्रकार सत्रहवीं शताब्दी से लेकर वर्तमान ठुमरी की रचनाओं में भी ब्रज भाषा का आधिपत्य दिखता है | अत: यह पता चलता है कि लोकधुन तथा लोक भाषा का प्रयोग ये दो मूल तत्व ठुमरी की शैली में या ठुमरी के अंतर्गत आज भी अभिन्न रूप से दृष्टिगोचर होते हैं | इससे यह अनुमान हो सकता है कि ठुमरी मूलत: लोक संगीत से सम्बद्ध है |

ठुमरी की बंदिशों की रचना, विषयवस्तु, राग, ताल आदि रचनागत विशेषताएँ और प्रस्तुतीकरण की शैलीगत विशेषताएँ उनमें निहित लोकतत्वों की ओर निर्देश करती हैं |

2.1.5.1 'चर्चरी' और 'ठुमरी' का तुलनात्मक विवेचन [36]

- संस्कृत भाषा के 'चलने' के अर्थवाले 'चर्' धातु से 'चर्चरी' शब्द की व्युत्पत्ति हुई है | इसलिए रंगमंच पर पात्रों के चलने की गति-लय के अर्थ में भी चर्चे शब्द व्यवहृत हुआ है | अनुमानत: पैरों की गति- लय के कारण ही 'चर्चरी' शब्द का अर्थविस्तार नृत्यविशेष के रूप में हुआ और उस नृत्य के साथ गाए गए गीतों को भी बाद में 'चर्चरी' कहा गया |

'ठुमरी' शब्द के मूल में पैरों की चाल को अभिव्यक्त करनेवाला 'ठुम' या 'ठुमक' शब्द है, जिसका अर्थविस्तार नृत्य के रूप में हुआ | अत एव ठुमरी का अर्थ विकास भी 'नृत्य के साथ गाये जानेवाला गीत' हुआ | इस प्रकार 'चर्चरी' और 'ठुमरी' दोनों शब्दों में व्युत्पत्तिजन्य और रूढ़ शब्दार्थ की दृष्टी से भी समानता है |

- संस्कृत में 'चर्चरी' शब्द विशिष्ट नृत्य, गीत, छंद और ताल के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है | आज भी 'चाँचर' शब्द को विशिष्ट लोकनृत्य, ठुमरी शैली के गीत और ताल विशेष के अर्थ में व्यवहार किया जाता है |
- 'चर्चरी' देशी संगीत का भेद था और ठुमरी भी आधुनिक काल के एक 'देशी' संगीत का ही भेद है |
- 'चर्चरी' रास संगीत की परंपरा का गीतभेद था | लक्षणों के आधार पर 'ठुमरी' भी रास परम्परा की गीत विधा सिद्ध होती है |
- नाट्य रासक और चर्चरी के लक्षण समान थे | अत: चर्चरी गान के साथ भी नृत्य और भावाभिनय प्रदर्शन होता था | ठुमरी गान के साथ भी ऐसी ही प्रथा रही है |
- चर्चरी गान और नृत्य प्रदर्शन में स्त्रीयों की प्रधानता थी | ठुमरी का गान और नृत्य भी मूलत: स्त्रीप्रधन माना जाता है | 'सुपासनाह्चरिय' नामक प्राकृत ग्रन्थ के अनुसार वाराणसी नगर की गायिका-नर्तकियाँ

---

[36] शुक्ल श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ली : हिन्दी माध्यम निदेशालय कार्यन्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ 114

अपने ‘चर्चरी’ गान के लिए प्रसिद्ध थीं | आज भी वाराणसी (बनारस) अपने ‘ठुमरी’ प्रदर्शन के लिए प्रसिद्ध है |

- ‘रासक’ में ‘लास्यांग’ और ‘भावप्रदर्शन’ की प्रधानता थी, जोकि श्रृंगार रस की उत्पत्ति के लिए महत्व के थे | अत: उसी परंपरा का एक भेद होने के कारण ‘चर्चरी’ के गान, नृत्य और भावाभिनय में शृंगार रस की प्रधानता थी | ‘ठुमरी’ में भी आंगिक एवं वाचिक अभिनय के द्वारा श्रृंगार रस का परिपोष होता है |
- ‘चर्चरी’ एक ऐसी गान विधा थी जिसमें विभिन्न तालों में विभिन्न गीत गाये जाते थे | ‘ठुमरी’ विधा में भी ‘ठुमरी’, ‘होली’, ‘दादरा’ आदि गीतों का समावेश होता है जो कि विभिन्न तालों में गाये जाते हैं |
- ‘चर्चरी’ गान वसंत ऋतू और मदनोत्सव के अवसर पर होता था | ‘ठुमरी’ का एक भेद ‘चाँचर’ (होली) भी वसंत ऋतू और विशेष कर होलिकोत्सव के अवसर पर गाया जाता है |
- ‘संगीतराज’ में ‘चच्चरी’ (चर्चरी का अपभ्रंश रूप) प्रबंध को ‘वसंतादि महोत्सव’ पर गाए जाने का उल्लेख है | जिससे यह पता चलता है कि वसंत ऋतू के अलावा भी एनी अवसरों पर ‘चर्चरी’ गई जाती थी | ‘ठुमरी’ भी सभी ऋतुओं में आनंदपूर्ण अवसरों पर गाई जाती है |
- ‘चर्चरीगान’ लोक शैली पर आधारित था | ‘ठुमरी’ पर भी लोक शैली का गहरा प्रभाव है |
- ‘चर्चरी’गीतों की रचना तत्कालीन जन भाषा ‘प्राकृत’ में होती थी | ‘ठुमरी’ की गेय रचनाएँ भी वर्तमान जनभाषाओं/बोलियों में होती हैं | ठुमरी की पुरानी रचनाएँ ब्रज भाषामें विशेष रूप से रचित होती हैं | ऐतिहासिक रूप से संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त ‘शौरसेनी प्राकृत’ के गीतों का विकास ‘शौरसेनी अपभ्रंश’ के माध्यम से ‘ब्रज भाषा’ के जनगीतों तक पहुँचता है | इस दृष्टि से ‘चर्चरी’ गीतों में प्रयुक्त जनभाषा ‘प्राकृत’ के विकास की प्रक्रिया भी ‘ठुमरी’ गीतों में प्रयुक्त होनेवाली ‘ब्रज भाषा’ तक पहुंचती है |
- ‘चर्चरी’ गीतों में ‘वसंत’ अर्थात् ‘देशी हिंदोल’ या ‘पूर्ण हिंदोल’ और ‘हिन्दोल’ आदि रागों के प्रयोग का उल्लेख मिलता है | विश्लेषण के अनुसार, इन रागों के स्वर वर्तमान समय के क्रमश: काफी और धानी रागों की स्वरावालियों के लगभग समान प्रतीत होते हैं | इन्हीं स्वरों से युक्त काफी, बरवा, सिन्दूरा, धानी इत्यादि रागों का प्रचुर मात्र में प्रयोग ठुमरी के आरंभिक स्वरुप में दिखाई पड़ता है |
- ‘चर्चरी’ नृत्य में ‘रासताल’ और उसके चतुरावर्तनीय प्रयोग का उल्लेख है | वर्तमान चतुर्मात्रिक ‘कहरवा’ ताल और प्राचीन ‘रासताल’ एक जैसे ही ताल हैं | ‘ठुमरी’ और ‘होली’ (चाँचर) के अंतिम भाग में कहरवा ताल की ‘लग्गी’ का प्रयोग भी चतुरावर्तनीय रूप में होता है | ठुमरी के एक भेद ‘दादरा’ गीत में भी कहरवा ताल का प्रयोग किया जाता है |

- ‘चर्चरी’ गीतों में सोलह मात्रावाले छंद और ताल का प्रयोग भी होता था | ठुमरी और उसके भेद होली में भी जत, पंजाबी, त्रिताल आदि 16 मात्राओं वाले तालों का उपयोग होता है |
- चर्चरी नृत्य के साथ व्यवहृत ‘ते ति गि ध’ शुष्काक्षरों से ठुमरी के साथ प्रयुक्त होनेवाले त्रिताल, सितारखानी, पंजाबी, चाँचर आदि तालों और लग्गी के ठेकों की साम्यता तथा क्रमिक विकास का आभास मिलता है |
- चर्चरी (चच्चरी) गान के एक भेद में ‘चण्डनि:सारुक’ अर्थात् ‘क्रीडाताल’ का प्रयोग होता था | यह स्वरुप और वज़न की दृष्टि से आधुनिक ‘दादरा’ ताल के सदृश था | दादरा ताल का प्रयोग ठुमरी के ही एक भेद ‘दादरा’ गीत में होता है |

इन अवलोकनों के अनुसार, ‘**चर्चरी**’ और ‘**ठुमरी**’ के लक्षणों में ऐसी समानताएँ दृष्टिगत होती हैं जिनसे यह विदित होता है कि वर्तमान ठुमरी की भाँती ही चर्चरी भी नृत्य और भावाभिनय सहित गाई जाने वाली प्राचीन और मध्य काल की गीत विधा थी | वह रास-संगीत से उद्भूत होकर नाट्य रासक के माध्यम से विकसित होकर लोक में प्रचलित हुई | लोक संगीत में चर्चरी गीतों की यह धारा प्राकृत और अपभ्रंश से होते हुए वर्तमान लोक-भाषा ब्रज के चाँचर गीतों तक पहुंची है |

आज ब्रज भाषा के चाँचर गीतों के गान का जो रूप मिलता है उसमें और ठुमरी गान में कोई विशेष भेद नहीं है | सांगीतिक दृष्टी से दोनों में स्वररचना और रूपरेखा एकसमान है | विषय वस्तु में वसंत और होली वर्णन के अतिरिक्त चाँचर गीतों के सभी लक्षण ठुमरी के जैसे ही हैं | अत: स्वर रचना तथा शैली की एकात्मता के कारण ही चाँचर (होली) को ठुमरी गान का एक भेद समझा जाता है | आज भले ही चाँचर (होली) को ठुमरी का भेद माना जाता हो, परन्तु देखा जाए तो चाँचर या चांचरी शब्द ठुमरी से अधिक पुराना है | नृत्य और भावाभिनय के साथ गाए जाने वाले गीतों की शृंखला में ‘ठुमरी’ शब्द ‘चाँचर’ के बाद की कड़ी है |

पूर्ण संभावना है कि कालान्तरमें वसंत और होली के विषयवस्तु वाले चर्चरी गीत का सम्बन्ध केवल इन विशिष्ट अवसरों तक सीमित रह गया हो और अन्य सभी अवसरों पर गाए जाने योग्य गीतों से ठुमरी सदृश गीतों का जन्म हुआ हो | आगे चलकर ब्रज भाषा में गेय इस प्रकार के गीतों को, नृत्य और भावाभिनय के साथ गाए जाने के कारण ही ब्रज और उसके आसपास के क्षेत्रों में ‘ठुमरी’ (नृत्यात्मक गीत) कहने की प्रथा चल पड़ी हो | आधुनिक काल में परिस्थितिवश ‘ठुमरी’ की लोकप्रियता के कारण इन गीतों की शैली विशेष को ‘ठुमरी शैली’ के नाम से ही संबोधित किया जाने लगा | इसी लिए आज चाँचर/ होली गान को ठुमरी के अंतर्गत माना जाता है |

उपरोक्त सभी विश्लेषणों के आधार पर, इस **अनुमान** की पुष्टि होती है कि **ठुमरी का उद्भव मध्य कालीन लोक शैली में गाए जाने वाले 'चर्चरी'/ 'चच्चरी' से हुआ है |** इस 'चर्चरीगान' की परंपरा प्राचीन काल की शृंगार प्रधान छालीक्य गान्धर्व, रास, नाट्य- रासक, चर्चरी प्रबंध विधाओं से होती हुई मध्यकालीन 'चर्चरीगान'/ 'चच्चरीगान' से मिलती है और आधुनिक काल में ब्रज-भाषीय 'चाँचर'/ 'चाँचरीगान' तक चली आई है और परिष्कृत होते होते शास्त्रीय संगीत की परिधि में पूर्णतया न आते हुए **'उपशास्त्रीय' विधा 'ठुमरी'** के रूप में अस्तित्व बनाए हुए है | [37]

2.1.6 श्री पीटर मैन्युअल जी का मत

श्री **पीटर मैन्युअल** ने अपनी पुस्तक 'Thumri Historical and Stylistic Perspective' में ठुमरी की उत्पत्ति सम्बन्धी अपना मत व्यक्त किया है, जिसके अनुसार **ठुमरी का आधुनिक रूप एक लम्बी, क्रमिक और अविरत उत्क्रांति की प्रक्रिया का परिणाम है** , जिसके मूल कम से कम गुप्त काल (ई. स. की चतुर्थ से षष्ठ शताब्दी) तक पीछे जाते हैं | [38]

- संस्कृत नृत्य नाटय में केवल गंभीर 'गान्धर्व' गीतप्रकार ही नहीं, बल्कि चंचल, सुकुमार वृत्ति के गीत प्रकार भी प्रयुक्त होते थे जिनकी तुलना वर्तमान समय की 'ठुमरी' के साथ की जा सकती है | ऐसा ही एक गीत प्रकार 'दत्तिलम्' में वर्णित '**पणिका**' था | पणिका एक श्रुन्गारात्मक स्त्रैण प्रकार होकर '**लास्य**' नामक अभिनयात्मक नृत्य प्रकार के साथ प्रयुक्त होता था |
- अन्य एक प्रकार था '**चतुष्पदी**' गीत जो कि छ: या आठ मात्र के सरल लोकोत्पन्न तालों में निबद्ध थे तथा उनकी भाषा ब्रज प्रदेश की लोकभाषा हुआ करती थी | इसके साहित्य में सामान्यत: नायिका के संयोग-श्रृंगार या वियोग-श्रृंगार के विषय रहते थे | ऐसे 'चतुष्पदी' काउदाहरण कालिदास रचित '**मालविकाग्निमित्र**' नामक नाटक में मिलता है |
- मतंग के '**ब्रुहत्देशी**' ग्रन्थ में उल्लेखित तथा '**संगीत रत्नाकर**' में भी जिसका उल्लेख है ऐसे गीत प्रकार '**नादवती**' के वर्णन से ऐसा ज्ञात होता है कि इसमें रागों के नियम शिथिल थे तथा शब्दों की/ साहित्य की अभिनयात्मक भावाभिव्यक्ति को ही प्राधान्य दिया जाता था |

---

[37] शुक्ल श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम निदेशालय कार्यन्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय. अध्याय 3, पृष्ठ 62 से 121.

[38] Manuel, P. (1989). *Thumri in Historical and Stylistic Perspective.* Delhi: Motilal Banarasidass. Pg. 34.

'पणिका', 'चतुष्पदी' और 'नादवती' जैसे गीत प्रकारों के वर्णन में ये लक्षण मिलते हैं जो वर्तमान काल की 'ठुमरी' में निहित हैं | इससे यह **अनुमान** हो सकता है कि **नाट्यशास्त्र के समय से भारतीय संगीत में ठुमरी सदृश चंचल, श्रृन्गारात्मक नृत्य गीतों का प्रचार रहा है |**

उपरोक्त तथ्यों के साथ यह भी अनुमान हो सकता हा कि ये श्रृन्गारात्मक नृत्य गीत तत्कालीन शास्त्रीय संगीत के साथ –साथ लोकोत्पन्न देशी संगीत से भी प्रभावित होते रहे होंगे | इस अनुमान का कारण है ब्रज प्रदेश के '**चर्चरी**' और '**रास**' जैसे प्रकारों का 'संगीत रत्नाकर' में उल्लेख | ये वे गीत और नृत्य प्रकार थे जो कि ज़्यादातर कृष्णलीला तथा होली/वसंत के विषयवस्तु पर आधारित थे अत: इनका वर्णन वर्तमान ठुमरी से मिलता-जुलता है |

- 'चर्चरी' को 'हिंडोल' राग तथा 'चर्चरी' ताल में निबद्ध गीत बताया गया है | 'संगीत रत्नाकर' में वर्णित तत्कालीन 'हिंडोल' राग का स्वरूप वर्तमान के 'काफी' राग से कुछ मिलता है |
- 'चर्चरी' की भाषा संस्कृत न होकर सामान्य लोक में प्रचलित 'शौरसेनी प्राकृत' बताई है | आधुनिक ब्रज भाषा का विकास पुरानी 'शौरसेनी प्राकृत'से ही हुआ है |
- पंद्रहवीं शताब्दी के ग्रन्थ 'संगीतराज' में भी 'चर्चरी' का उल्लेख है जो कि राग 'वसंत' में निबद्ध रचना है | तत्कालीन राग 'वसंत' आधुनिक राग 'काफी' के स्वरों से साम्यता रखता था |
- हिंडोल, वसंत, काफी ये सभी राग विशेषकर वसंत ऋतू से सम्बंधित माने जाते हैं |

इस प्रकार रास, चर्चरी और ठुमरी के बीच में ऐसी समान विशेषताओं का होना इस बात की ओर संकेत करता कि तत्कालीन लोक संगीत की चर्चरी और रास विधाओं से ही ठुमरी गीतों की उत्पत्ति हुई है | [39]

2.1.7 शोधार्थी का मत

ऐतिहासिक तथ्यों तथा ठुमरी के अभ्यासकों के संशोधन से यह पता चलता_है कि **ठुमरी के समप्रकृतिक गीत प्रकार दूसरे नामों से संभवत: लोक संगीत / देशी संगीत में प्रचार में थे जैसे कि प्राचीन काल में 'रास', 'चतुष्पदी', 'पणिका', 'नादवती', 'चर्चरी'; मध्यकाल में 'चच्चरी', 'रास' आदि | इससे यह स्पष्ट होता है की श्रृंगारिक सुकुमार वृत्ति के गीत प्रकारों की परंपरा भारतीय समाज में काफी पुराणी है |**

संभव है कि यही प्रकार ठुमरी के 'पूर्वज' भी रहें हों | लेकिन इन्हीं से ठुमरी की उत्पत्ति हुई है ऐसा निश्चित रूप से दर्शानेवाले लिखित या मौखिक परंपरा के ठोस प्रमाण इतिहास में कहीं उपलब्ध नहीं है | इस लिए ठुमरी की उत्पत्ति का निश्चित बिन्दू निर्धारित नहीं हो सकता |

[39] Manuel, P. (1989). *Thumri in Historical and Stylistic Perspective.* Delhi: Motilal Banarasidass. Pg. 44.

सत्रहवीं शताब्दी से पहले भारतीय संगीत के क्षेत्र में 'ठुमरी' इस विशिष्ट नाम से कोई गीतप्रकार प्रकाश में नहीं था | सत्रहवीं शताब्दी में भी इसका प्रदर्शन दरबार में होने का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं हुआ है | अर्थात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उसका स्वरूप, सांगीतिक परिपक्वता और शिष्ट समाज में स्थान बहुत ऊँचे स्तर का नहीं होगा | केवल दरबार में प्रवेश के बाद ही उसे विशिष्ट सांगीतिक विधा का स्थान मिला |

2.2 ठुमरी का विकास

2.2.1 ठुमरी की प्रारंभिक अवस्था

सत्रहवीं से अठारहवीं शताब्दी के बीच के काल में 'ठुमरी' नाम की गीतविधा का जो उल्लेख मिलता है उससे यह पता चलता है कि **उस काल में प्रत्यक्ष 'ठुमरी' नाम का गीतप्रकार प्रकाश में आ चूका था और उसका स्वरुप 'समाज के वेश्या तथा संगीतजिवी वर्ग की स्त्रियों का नृत्योपयोगी गानप्रकर' ऐसा था |**

श्रृंगारिक प्रकृति, स्त्रियोचित गानशैली तथा साहित्य, ब्रज प्रदेश के लोक संगीत के प्रकारों से रचनागत निकटता और नृत्य के साथ उपयोग करकर भावाभिनय की क्षमता इन सभी कारणों के चलते इस प्रकार का चयन वेश्यावर्ग द्वारा किया गया होगा , ऐसा शोधकर्ता का मानना है |

ठुमरी का उपयोग वेश्यावर्ग की कलाकार स्त्रियों – तवायफों, कोठेवाली बाईयों द्वारा तब तक होता रहा जब तक बीसवीं शताब्दी के मध्यभाग से उनकी व्यावसायिक परिस्थितियाँ खराब होने लगीं | इस लिए **ठुमरी के विकास के सभी पड़ावों में, उसके विकसित रूप को आगे ले जाने की प्रक्रिया में इनकी भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही है |**

2.2.2 ठुमरी का 'अवध' के दरबार में प्रवेश और 'बोल-बाँट ठुमरी' का उदय

'श्रृंगारिक और विशिष्ट गायकीयुक्त नृत्योपयोगी गानविधा' के रूप में प्रत्यक्ष 'ठुमरी' को मान्यता **अठारहवीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश में लखनऊ दरबार के वातावरण में प्रवेश के बाद**, अवध के नवाबी राज्याश्रय में मिली | अवध के दरबार में प्रवेश के बाद, वेश्यावर्ग-तवायफों के साथ-साथ कुछ प्रतिष्ठित संगीतकार-कलाकारों द्वारा 'ठुमरी' का सांगीतिक सामर्थ्य पहचाने जाने के बाद इस विधा को 'उपशास्त्रीय' स्वरुप आने लगा | इसका कारण यह था की प्रतिष्ठत , शास्त्रीय संगीत के कलाकारों को इस प्रकार ने आकर्षित किया और इसमें कंठ्य, वाद्य संगीत दोनों प्रकार सम्मिलित हैं |

2.2.2.1 उस्ताद सादिक़ अली खाँ (ई. स. 1800-ई. स. 1910)

उस्ताद सादिक अली खाँ क़व्वाल बच्चे घराने से सम्बन्धित लखनऊ दरबार के संगीतज्ञ थे | कई संगीतज्ञों के अनुसार 'लखनऊ' ठुमरी के प्रचार–प्रसार में इन्हीं का योगदान अनन्य साधारण है क्योंकि ये ही थे जिन्हों ने लखनऊ में दरबार में ठुमरी की प्रस्तुति करना प्रारंभ किया | उस्ताद सादिक़ अली खाँ वैसे ख्याल की परम्परा से आते हुए भी ध्रुपद, धमार, टप्पा, सादरा, तराना आदि में प्रवीण थे और ठुमरी के प्रस्तुतिकरण में तो उन्हें विशेष कौशल्य प्राप्त था | [40] इन्हों ने ही ठुमरी की विधा को प्रारंभिक अवस्था से परिष्कृत किया, दरबार तथा शिष्ट समाज में प्रस्तुत करने योग्य सांगीतिक विकास किया और उसके परिपक्व स्वरुप को सामने लाने में बड़ा योगदान दिया | [41] इन्हीं को **'लखनऊ' ठुमरी का प्रवर्तक** भी माना जाता है |

उस्ताद सादिक़ अली खाँ के सन्दर्भ में आगरा घराने के प्रसिद्ध संगीतग्य उस्ताद विलायत हुसैन खाँ का एक कथन इस प्रकार है: "क़व्वाल बच्चों के घराने के बड़े प्रसिद्ध गवैयों में से सादिक़ अली खाँ का नाम बहुत उल्लेखनीय है | यह नवाब वाजिद अली शाह के समय लखनऊ में थे और उसके बाद भी कई वर्ष ज़िन्दा रहे | इन्होंने अपने घराने की गायकी को कायम रखने के साथ–साथ ठुमरी में बड़ी विशेषता उत्पन्न की |इसे इन्हों ने ऐसा प्रभावोत्पादक बनाया कि उसके बाद से ठुमरी का रंग ही बदल गया | यह गायकी हर व्यक्ति को पसंद आई और तमाम पूर्वी हिन्दुस्तान इसके रंग में रंग गया | बनारस ,गया, कलकत्ते वगैरह में इसका बहुत ज्यादा प्रचार हुआ |" [42]

उस्ताद सादिक़ अली खाँ के शिष्यों में स्वयं नवाब वाजिद अली शाह तथा क़दर पिया, प्रसिद्ध कथक बिंदादीन महाराज (लखनऊ), भैया गणपत राव (ग्वालियर), हारमोनियम वादक तथा ठुमरी मर्मज्ञ ठाकुर नवाज़ अली खाँ (अकबरपुर रियासत के राजा), ख्याल गायक खुर्शीद अली खाँ (लखनऊ), छोटे मुन्ने खाँ (लखनऊ), इनायत हुसैन खाँ (सहसवान), नबीबख्श खाँ (पंजाब), रामकृष्ण बुवा वझे (महाराष्ट्र) और शिष्याओं में तत्कालीन लखनऊ की प्रसिद्ध तवायफें/ गायिकाएँ हैदरजान और नजमा के नाम प्रसिद्ध हैं | [43] अपने लम्बे जीवनकाल के दौरान उस्ताद सादिक़ अली खाँ ने इन और ऐसे कई कलाकारों को ठुमरी तथा संगीत की शिक्षा दी होगी | इस

---

[40] शुक्ल श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ली : हिन्दी माध्यम निदेशालय कार्यन्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ 144.

[41] Manuel, P. (1989). *Thumri in Historical and Stylistic Perspective.* Delhi: Motilal Banarasidass. Pg.68.

[42] शुक्ल श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ली : हिन्दी माध्यम निदेशालय कार्यन्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ 145.

[43] Manuel, P. (1989). *Thumri in Historical and Stylistic Perspective.* Delhi: Motilal Banarasidass. Pg. 68.

प्रकार से **लखनऊ में पनपी इस ठुमरी गान की कला को शिष्यगण के माध्यम से प्रसारित करने का महत्वपूर्ण कार्य भी इनके द्वारा हुआ|**

2.2.3 कथक और ठुमरी

लखनऊ के दरबार में इस काल में ठुमरी के साथ साथ कथक नृत्य के भी गुणी कलाकार और प्रतिभावान वेश्याएँ/ तवायफें अपनी कला प्रदर्शित करती थीं | मुघल शासन के पतन के बाद संगीतजीवी वर्ग के लिए अवध का लखनऊ दरबार एक बड़ा आश्रयस्थान था | **अठारवीं शताब्दी के अंतिम चरण में कथक नृत्य का विकास लखनऊ के दरबार के वातावरण में ठुमरी के विकास के समानांतर रूप से होने लगा** | मूलत: ठुमरी का प्रयोग इन्ही नृत्यों के प्रस्तुत करने के लिए श्रृन्गारात्मक गीतों के रूप में हुआ था | कथक नृत्य की संगति के लिए ठुमरियों का उपयोग बहुत योग्य जान पड़ता था, अत: कथक के कलाकार, जिनमें पारंपरिक कथक जाती के कलाकार शामिल थे, उन्हों ने भी 'कथक नृत्योपयोगी संगीत' के रूप में ठुमरी को अपनाया |

अठारवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान कत्थक नृत्य के विकास और प्रचार में लखनऊ दरबार से सम्बंधित नर्तकों ने बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान दिया | इनकी परंपरा कथक नृत्य में **'लखनऊ घराना'** के नाम से प्रसिद्ध है | नर्तक **प्रकाशजी** जब इलाहाबाद से लखनऊ आए तब वे तत्कालीन **नवाब आसफ़-उद-दौला** के दरबार से जुड़ गए | यह अठारवीं शताब्दी की घटना है |

इन कारणों से ठुमरी का प्रचार प्रसार अवध तथा आस-पास के विस्तार में होने लगा | इन बदलावों की वजह से 'ठुमरी' विधा में 'शास्त्रीयता' का प्रवेश हुआ | शास्त्रीय संगीत के संपर्क और अवध के नवाबी वातावरण के प्रभाव के कारण ठुमरी के प्रारंभिक **ब्रज-भाषीय लोक-प्रेरित, सरल रूप में परिष्करण** होने लगा | साहित्य में कभी कभी **अवधी के शब्द, उर्दू के शेर या कुछ उर्दू के शब्द क्वचित रूप से** आने लगे | इसी दौरान ख्याल के एक प्रकार 'छोटा ख्याल' के प्रभाव के कारण ठुमरी के प्रस्तुतीकरण में **लयकारी** और **आलाप** का समावेश हुआ, जो की बंदिश/गीत के बोलों को लेकर किये जाते थे | जिसमें से लयकारियाँ **'बोल-बाँट'** के नाम से जाने गईं | | ताल पक्ष में, सरल कहरवा की अपेक्षा **'तीनताल' के ठेकों** का प्रचुर मात्रा में उपयोग होने लगा |

2.2.4 'बोल-बाँट'/ 'लखनऊ' ठुमरी का विकास, लोकप्रियता

लगभग **उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध** तक लखनऊ और आस-पास के प्रदेशों में इस 'ठुमरी' का खूब प्रचार हुआ | इसलिए इस **'लखनऊ ठुमरी'** के नाम से प्रसिद्धि मिली | धीरे धीरे इस ठुमरी का प्रसार पूरे उत्तर भारत में हुआ |

नृत्य के साथ प्रयुक्त होने की वजह से ये ठुमरियां संरचना में सुगठित और व्यवस्थित हो गयीं | इसकी वजह से इनको **'बंदिश की ठुमरी'** ऐसा भी कहा जाने लगा |

2.2.4.1 नवाब वाजिद अली शाह (ई. स. 1822- ई. स. 1887)

ई. स. 1847 में अवध पर नवाब वाजिद अली शाह का शासन स्थापित हुआ और उनके शासनकाल में लखनऊ में ठुमरी और कथक का खूब विकास हुआ |

प्राप्त दस्तावेजों और संशोधनों से विदित होता है की इनके दरबार में संगीत, साहित्य और नृत्य के कई गुणी कलाकारों को आश्रय मिला | [44]

स्वत: नवाब अच्छे शायर, कवी और नर्तक थे | तत्कालीन नवाबी विलासी वातावरण में स्वत: नवाब **ठुमरी**, **रास** और **कथक** के प्रति बहुत आकर्षित हुए और इन विधाओं को बहुत ही प्रोत्साहन मिला | दरबारी **नर्तक ठाकुर प्रसादजी** और **दुर्गा प्रसादजी** से उन्होंने कथक की शिक्षा ली थी | उनसे कुछ संगीतज्ञों ने शिक्षा भी ली थी ऐसे उल्लेख मिलते हैं | [45] इनके द्वारा रचित उर्दू **'इन्दरसभा'** नामक नृत्य नाटिका में ब्रज भाषा के कई गीत और रचनाएँ ठुमरी–सदृश हैं | ये ब्रज प्रदेश और अवध प्रदेश के वैष्णव **'रासधारियों'** के संगीत और नृत्य से इतने प्रभावित हुए की प्राय: उसी प्रकार के नृत्य-नाट्य **'रहस'** के नाम से प्रस्तुत करते थे जिनमें वे स्वतः कृष्ण की भूमिका में किया करते थे| इन नृत्य-नाट्यों के संवाद मुख्य रूप से उर्दू भाषा में रहते थे, जबकि गेय पदों के लिए ब्रज भाषा की ठुमरियाँ और होली गीतों का समावेश किया गया | उनके अन्तःपुर में स्त्रियों की **'परीखाना'** नामक मण्डली का निर्माण किया गया था जिसकी तालीम के लिए तत्कालीन उच्च स्तर के संगीतज्ञों को नियुक्त किया गया था |

वाजिद अली शाह ने **'अख्तर'** या **'अख्तरपिया'** उपनाम से कई ठुमरियों की रचना की | इनमें से कुछ तो बहुत ही प्रसिद्ध रचनाएँ हैं, जैसे की भैरवी की प्रसिद्ध ठुमरी **'बाबुल मोरा नैहर छुटो जाय'** |

ठुमरी- भैरवी पंजाबी त्रिताल

---

[44] शुक्ल श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम निदेशालय कार्यन्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ 139.

[45] भावे, न. श. (1942). *नर्तक म. शेख़ राहतअली इनका ठुमरी-संग्रह. प्रथम भाग.* बड़ौदा. म. शेख़ राहतअली इनकी अल्प जीवनी. पृष्ठ II.

स्थायी- बाबुल मोरा नैयर छुटो जाय |

अंतरा- चार कहार मिल डुलियाँ मंगावो

अपना बेग़ाना छूटो जाय |[46]

इस प्रकार अवध के नवाब वाजिद अली शाह को **ठुमरी और कथक नृत्य को लखनऊ के दरबार में प्रश्रय देकर** और **स्वत: भी उस विधा को सीखकर उसमें रचनाकार्य करने का श्रेय** दिया जाता है |

स्वत: शासक की व्यक्तिगत रूचि और झुकाव के परिणाम स्वरुप उनके परिवार के सदस्यों में भी इस विधा के लिए रूचि उत्पन्न हुई | वाजिद अली शाह की एक **बेग़म 'खासमहल'** ने उपनाम **'आलम'** से और पूर्ववर्ती नवाब नसीरुद्दीन हैदर के पौत्र, वाजिद अली के रिश्तेदार **वज़ीर मिर्ज़ा बाला क़दर** ने उपनाम **'कदर'** या **'कदरपिया'** से अनेक ठुमरियों की रचना की, जिनमें से आज भी कई मधुर ठुमरियाँ प्रचलित हैं |

फलत: इस समय के दौरान कई गुणी कलाकारों और कथक नर्तकों द्वारा अनेक ठुमरियों की रचना हुई, जिनमें से आज भी कई परंपरागत ठुमरियां प्रसिद्ध हैं | इस समय तक लखनऊ ठुमरी और कथक दोनों विधाओं का केंद्र बन गया | यहीं से लखनऊ ठुमरी/ बोल-बाँट ठुमरी उत्तर भारत के अन्य प्रदेशों में प्रचलित हुई |

2.2.5 कथक के महत्वपूर्ण कलाकार

इलाहाबाद से लखनऊ आकर बसे कथक नर्तक प्रकाशजी के पुत्र **दुर्गा प्रसाद** और **ठाकुर प्रसाद** दोनों वाजीद अली शाह के दरबार में नर्तक थे | स्वयं वाजिद अली शाह ठाकुर प्रसाद के शिष्य थे | इनके बाद की पीढ़ी के सुप्रसिद्ध नर्तक, दुर्गा प्रसाद के बेटे, **महाराज बिंदादीन** और **कालकाजी** भी नवाब के दरबार में कथक नर्तक के रूप में कार्यरत थे | इनमें से बिंदादीन महाराज का ठुमरी के विकास में योगदान महत्वपूर्ण रहा |

2.2.5.1 बिंदादीन महाराज (ई. स. 1836- ई. स. 1917)

ठुमरी एवं कथक के इतिहास में बिंदादीन महाराज का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है | नवाब वाजिद अली शाह के दारबार में ये कार्यरत थे | इन्होंने उस्ताद सादिक़ अली खाँ से ठुमरी गान सीखकर स्वयं अनेक ठुमरियों की रचना की और महफिलों में भावभीने सहित प्रस्तुत करना आरम्भ किया | [47] ठुमरी का कथक नृत्य के साथ प्रस्तुतीकरण और उसके गीत के 'अर्थ-भाव' का पदार्थाभिनय द्वारा प्रकटीकरण इसकी शुरुआत इन्हीं से

---

[46] भातखंडे, पं. वि. ना. (2017). *हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका भाग 2.* (श्रीवास्तव पं. ह., सं.) इलाहाबाद : संगीत सदन प्रकाशन. पृष्ठ 404.

[47] शुक्ल श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम निदेशालय कार्यन्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ 146

मानी जाती है | इनकी बनायी हुई ठुमरी रचनाओं में 'कृष्णलीला' ही मुख्य विषय रहा है | इनकी रचनाएँ खास तौर पर नृत्य के लिए उपयुक्त ऐसी बंदिश की ठुमरियाँ होती थीं |[48]

बिंदादीन महाराज

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तर भाग में, वाजिद अली शाह के बाद का समय लखनऊ के पतन का समय था | ई. स. 1856 में अंग्रेजों द्वारा उनको पदभ्रष्ट करके उन्हें कलकत्ता में नज़रक़ैद किया गया और लखनऊ से कई कलाकार उनके साथ कलकत्ता आ गए, जिसके कारण कलकत्ता, गया, पटना, बनारस जैसे स्थानों पर ठुमरी का प्रसार हुआ | इसके बाद लखनऊ ठुमरी और कथक का सर्वोच्च केंद्र नहीं रहा | अवध राज्य के पतन के बाद कई संगीतज्ञ, नर्तक आदि कलाकार उत्तर भारत के अन्य नगरों में प्रस्थान कर गए | उनके साथ-साथ ठुमरी भी अलग-अलग जगहों पर पहुंची | श्री शत्रुघ शुक्ल ने अपनी पुस्तक में इस बात का उल्लेख किया है की उन्नीसवीं शताब्दी के श्री कृष्णधन बनर्जी और सर सौरिन्द्र मोहन ठाकुर जैसे संगीतविदों ने अपने ठुमरी से सम्बंधित वर्णनों में 'लखनवी ठुमरी' के ही उल्लेख दिए हैं | [49] अन्य कोई प्रकार या गान शैली का अस्तित्व इस समय तक नहीं दिखता |

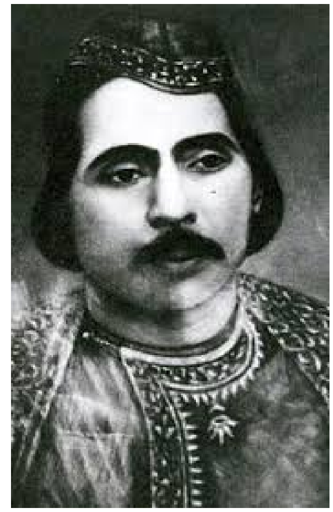

कालका प्रसादजी

2.2.6 ठुमरी का संक्रमणकाल: 'बोल-बाँट' ठुमरी का गानविधा के रूप में क्षय, नृत्य से पूर्ण रूप से स्वतंत्रता एवं 'बनारस' ठुमरी/ 'बोल-बनाव' ठुमरी का उदय

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में ठुमरी के 'लखनवी' स्वरुप में परिवर्तन आना आरम्भ हुआ ऐसा माना जाता है | ख्याल और टप्पा के प्रभाव से ठुमरीगायन में तान क्रिया और बोल-आलापों का योग हुआ और आलापों की क्रिया करने हेतु लय में कुछ धीमापन आने लगा, जिसे हम आधुनिक 'बोल-बनाव' का पूर्व स्वरुप कह सकते हैं |

---

[48] Manuel, P. (1989). *Thumri in Historical and Stylistic Perspective.* Delhi: Motilal Banarasidass. Pg.

[49] शुक्ल श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम निदेशालय कार्यन्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ 152.

इस परिवर्तन की प्रक्रिया के फलस्वरूप आगे चलकर मूल 'लखनऊ'/ 'बोल-बाँट'/ 'बंदिश' ठुमरी के गायन की लोकप्रियता में कमी आने लगी |

ठुमरी के प्रयोग के आधार पर इस युग तक दो प्रकार की ठुमरियों का अस्तित्व प्रस्थापित हो गया :

(1) नृत्यप्रधान ठुमरी, जो कि कथक नर्तकों और वेश्याओं/तवायफों द्वारा नृत्य प्रस्तुति के लिए सहायक गीत के रूप में प्रयोग की जाती थीं | इनमें ठुमरी के बोलों के अर्थ-भाव को मौखिक एवं आंगिक अभिनय, गात्र-विक्षेप, पदन्यास इत्यादि के माध्यम से प्रकट किया जाता था | गानक्रिया का स्थान गौण था | इस प्रकार की गीताभिनय युक्त नृत्य ठुमरी में भावाभिव्यक्ति का माध्यम कंठध्वनि एवं नृत्य के घटक उपलब्ध थे, जिससे प्रस्तुतकर्ता को क्रमश: वाचिक एवं आंगिक अभिनय की सुविधा रहती थी |

(2) गानप्रधान ठुमरी, जो कि केवल गानक्रिया की प्रस्तुति के लिए संगीत के कलाकारों और प्रतिभावान वेश्याओं/तवायफों द्वारा प्रयोग की जाने लगी थी | इसमें, नृत्य के अभाव से, आंगिक अभिनय, गात्र-विक्षेप, पदन्यास इत्यादि घटक भावाभिव्यक्ति के लिए उपलब्ध न रहे और गायक/गायिका के सामने भावाभिव्यक्ति के लिए एक ही माध्यम कंठध्वनि पर निर्भर रहना पड़ा, फलत: वाचिक अभिनय की ही सुविधा रही | इस स्थिति में भावाभिव्यंजना के लिए स्वर-सन्दर्भों और काकू-प्रयोग का महत्व अत्यधिक हो गया | यद्यपि प्रस्तुतीकरण के दौरान मुखमुद्राओं, हस्त-संचालन जैसी चीज़ों का आंशिक रूप से आन्गिकाभिनय के लिए उपयोग चला ही आ रहा है, [50] किन्तु नृत्य की तुलना में इसका प्रमाण बहुत ही कम है | गीत के बोलों में निहित भावों को प्रभावोत्पादक रूप से प्रस्तुत करने के लिए बोलों के विस्तार की क्रिया में लखनवी परंपरा की पद्धति यानी 'बोल-बाँट' प्रयोग और एक नई पद्धति यानी 'बोल-बनाव' का विकास होने लगा | बोल-बनाव पद्धति के विस्तार में स्वर-सन्निवेशों को सावकाश तरीके से उपयोग होने लगा | इसके हेतु बोल विस्तार की क्रिया और एकंदर पूरे प्रस्तुतीकरण की गति धीमी होने लगी जिससे की ठुमरी में चैनदारी और सावकाशत्व का प्रादुर्भाव हुआ | ख़ासकर गायकी अंग की ठुमरियों के लिए इस पद्धति का उपयोग बहुत ही अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ | जब बनारस में कलाकारों द्वारा गानप्रधान ठुमरी का इस बोल-बनाव तकनीक के उपयोग से खूब विकास हुआ तब '**बनारस ठुमरी**' और '**बोल-बनाव ठुमरी**' ये पर्यायवाची शब्द बन गए |

इस संक्रमणकाल के दौरान लखनऊ के पूर्व में स्थित बनारस नगर में ठुमरी के तत्कालीन स्वरुप को वहाँ के लोक संगीत ने प्रभावित करना आरम्भ कर दिया | बनारस प्राचीन काल से भारत के महत्वपूर्ण धार्मिक एवं सांस्कृतिक केन्द्रों में से एक रहा है | मध्यकाल से ही वह पूर्वीय उत्तर प्रदेश का एक महत्वपूर्ण आर्थिक केंद्र रहा है

[50] बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में संगीत विभाग में कार्यरत डॉ. श्रीमती रेवती जी साकलकर से हुई प्रत्यक्ष बातचीत.

| इसलिए कई संगीतकार एवं नृत्यकार इस नगर में आकर बस गए थे | कहा जाता है की यहाँ के पारंपरिक कथक लखनऊ के कथकों से सम्बन्धित थे | [51] 'लखनऊ' की 'बोल-बाँट' ठुमरी तो यहाँ पहले से ही पहुँच चुकी थी, परन्तु अब यहाँ के कलाकारों द्वारा इसमें **पूर्वी प्रान्त के लोक संगीत के तत्वों** का योग होने लगा, जैसे की **सरल धुन-रागों में ही ज्यादातर रचनाएँ, द्रुत गति के प्रस्तुतीकरण के लिए 'दादरा' नामक शैली का प्रयोग जिसमें भी लोकगीतों से साधर्म्य रखनेवाली धुनें, तीनताल के स्थान पर सितार्खानी या पंजाबी ठेके, दादरा में कहरवा और दादरा का प्रयोग, चाँचर ताल का प्रयोग, लग्गी का प्रयोग , ख्याल प्रेरित लम्बी तानों का अभाव और साहित्य में भोजपुरी भाषा का शुद्ध या मिश्रित रूप में प्रयोग** |

कहा जाता है की ग्वालियर नरेश के दुसरे पुत्र **भैया गनपत राव** और बनारस के **जगदीप मिश्र** की भूमिका ठुमरी के इस संक्रमण के लिए महत्वपूर्ण थी | ठुमरी को धीमी लय में प्रस्तुत करना और बोलों के आलाप द्वारा भावाभिव्यक्ति, जिसे प्रारंभिक अवस्था का बोल-बनाव भी कह सकते हैं, उसे बोल-बाँट से अधिक महत्व देकर आधुनिक **'बोल-बनाव'** ठुमरी की नींव रखी |

2.2.6.1 भैया गणपत राव (ई. स. 1852- ई.स. 1920)

भैया गणपतराव [52]

तत्कालीन ग्वालियर नरेश जयाजीराव और उनकी रक्षिता उपपत्नी, संगीतजीवी गायिका चंद्रभागाबाई के पुत्र भैया गणपतराव संगीत को मातृपक्ष से विरासत में लेकर आये थे | गायन में इन्होंने ध्रुपद, ख्याल और ठुमरी, टप्पा की तालीम ली थी | वाद्यों में ये बीन और हारमोनियम का ज्ञान रखते थे | ठुमरी की विशेष तालीम इनको लखनऊ के उस्ताद सादिक़ अली खाँ से प्राप्त हुई | **ठुमरी के गीत के बोलों में निहित भावों को केवल गायन द्वारा प्रकट करने के लिए, धीमी गति के बोल-आलापों को विविध प्रकार के स्वर-समूहों और भावानुकूल काकू- प्रयोगों से सजाकर वे प्रस्तुत करते थे** | [53] यह पध्धति 'बोल-

---

[51] शुक्ल श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम निदेशालय कार्यन्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ 153.

[52] Retrived on April 24, 2019 from http://radioplaybackindia.blogspot.com/2012/06/bhaiya-ganpat-rao-harmoniyam.html

बनाव' के नाम से प्रसिद्ध हुई | भैया गनपत राव अपने हारमोनियम वादन के लिए भी जाने जाते थे | हारमोनियम पर गायकी अंग से ठुमरी का वादन करने में उन्हें ऐसी महारत हासिल थी की लोग प्राय: कहा करते थे कि भैया गनपत राव की हारमोनियम में ठुमरी बजती नहीं, बल्कि बोलती है |[54]

उनके शिष्यों में मौजुद्दीन खाँ (बनारस), श्री गिरिजाशंकर चक्रवर्ती, गौहरजान, जद्दनबाई, श्यामलाल खत्री, मीर ईरशाद अली (कलकत्ता), गफूर खाँ,सोहनी सिंह (गया), सज्जाद हुसैन, सैयद अली क़दर 'बब्बन' (लखनऊ), बशीर खाँ (इंदौर), जंगी खाँ (ग्वालियर) आदि ठुमरी एवं हारमोनियम के प्रसिद्ध कलाकारों का समावेश होता है | **'सुघरपिया' उपनाम से भैया गणपत राव ने कई ठुमरियों की रचना भी की है | यद्यपि उन्होंने पूरे उत्तर भारत में भ्रमण करके ठुमरी की लोकप्रियता बढाई, उनका अधिकतम समय लखनऊ, बनारस, गया, पटना और कलकत्ता इन जगहों पर गुजरा इसलिए इन क्षेत्रों में 'बोल-बनाव' ठुमरी और हारमोनियम वादन का प्रभाव बहुत ज्यादा बढ़ा |**[55]

2.2.6.2 जगदीप मिश्र

भैया गनपत राव के समकालीन ठुमरी कलाकरों में आजमगढ़ से काशी आकर बसे **जगदीप मिश्र** का नाम आदर के साथ लिया जाता है | बनारस बोल-बनाव पद्धति के प्रचार-प्रसार में इनका भी महत्वपूर्ण योगदान रहा | वे मूल कथक जाती के थे | **बनारस के लोग इन्हीं को 'बनारसी बोल-बनाव' ठुमरी के प्रवर्तक मानते हैं |**

[56]

मौजुद्दीन खाँ

2.2.6.3 मौजुद्दीन खाँ

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों के प्रसिद्ध ठुमरी गायकों में बनारस के मौज़ुद्दीन खाँ का नाम प्रथम श्रेणी में आता है | इनका जन्म ई. स. 1875 के

---

[53] शुक्ल श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ली : हिन्दी माध्यम निदेशालय कार्यन्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ 150.

[54] शुक्ल श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ली : हिन्दी माध्यम निदेशालय कार्यन्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ 151.

[55] शुक्ल श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ली : हिन्दी माध्यम निदेशालय कार्यन्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ 150.

[56] Retrived on April 24, 2019 from http://radioplaybackindia.blogspot.com/2012/06/bhaiya-ganpat-rao-harmoniyam.html

आसपास पंजाब में हुआ लेकिन बाद में इनका परिवार बनारस के पास काशी में आकर बस गया | माता-पिता दोनों की और से संगीत विरासत में मिला था | कहते है की पहले ये जगदीप मिश्र की ठुमरी से बहुत प्रभावित हुए और इनकी प्रारंभिक गायकी पर जगदीप मिश्र का प्रभाव था | तत्पश्चात वे भैया गनपत राव के शिष्य हुए | इसी संक्रमणकाल में ठुमरी को '**नृत्य से स्वतंत्र उपशास्त्रीय गानविधा**' की प्रतिष्ठा मिलने लगी थी |

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से भारत में रिकॉर्डिंग उद्योग की शुरुआत हुई और कई गायक-गायिकाओं की रिकॉर्ड्स निकलीं | इनमें ठुमरी विधा के तत्कालीन प्रसिद्ध कलाकार भी थे जैसे कि गौहर जान, मौजुद्दीन खाँ, इलाहाबाद की जानकी बाई- छप्पनछुरी, आगरे की मलका जान वगैरह | ईससे पहले रिकॉर्डिंग की सुविधा के अभाव में ठुमरी के स्वरुप के प्रायोगिक प्रमाण नहीं मिलते | संभव है कि रिकॉर्डिंग्स की समय मर्यादा के चलते केवल आंशिक रूप से ही ठुमरी का स्वरुप स्पष्ट हुआ हो, फिर भी तत्कालीन ठुमरी के प्रायोगिक स्वरुप का संकेत देने का कार्य ये

रिकॉर्डिंग करते हैं | इन रिकॉर्डिंग्स में लखनऊ ठुमरी के 'बोल-बाँट', छोटा ख़याल सदृश विस्तार एवं प्रारम्भिक अवस्था के 'बोल-बनाव' इन सभी का सह-अस्तित्व दृष्टिगोचर होता है | [57]

[58]

गौहर जान (१८८७-१९२७)

[59]

जानकी बाई (१८८०-१९३६)

2.2.7 आधुनिक परिपक्व बनारस ठुमरी / बोल-बनाव ठुमरी

बीसवीं शताब्दी का प्रथम चतुर्थांश पूर्ण होते-होते उत्तर भारत के पूर्वीय क्षेत्रों में '**बोल-बनाव**' ठुमरी का वर्चस्व और लोकप्रियता इतनी बढ़ गई कि वहाँ गायन के हेतु से '**बोल-बाँट**' ठुमरी की लोकप्रियता कम होने लगी |

[57] Manuel, P. (1989). *Thumri in Historical and Stylistic Perspective.* Delhi: Motilal Banarasidass. Pg.76.
[58] File:Gauhar Jaan.jpg. (2017, October 3). *Wikimedia Commons, the free media repository*. Retrieved 16:06, April 24, 2019 from https://commons.wikimedia.org/w/index.php?title=File:Gauhar_Jaan.jpg&oldid=261092879
[59] Retrieved on April 24, 2019 from https://images.indianexpress.com/2018/06/janki-bai-ilahabadi.jpg?w=759&h=422&imflag=true

बनारस और आस-पास के प्रदेश के कलाकारों ने '**बोल-बनाव**' पद्धति के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया इसलिए इसे '**बनारस' ठुमरी** के नाम से जाना जाने लगा और बनारस,इलाहाबाद, गया, पटना तथा कलकत्ता आदि पूर्वी प्रान्त में इस प्रकार की ठुमरी का प्रचार-प्रसार अधिक होने से इसे '**पूरब अंग ठुमरी**' के नाम से भी जाना जाने लगा |

2.2.7.1 पूरब अंग ठुमरी

पूरब अंग की गायन शैली में ठुमरी के बोल विस्तार की क्रिया में बोल-बनाव क्रिया का महत्त्व बहुत ही बढ़ गया | जिसके परिणाम स्वरुप एकंदर गान की गति कम हो गयी और अधिकांश ठुमरियाँ विलंबित गति के जत ताल, अद्धा या पंजाबी त्रिताल, दीपचंदी ताल जसे तालों में प्रस्तुत होने लगीं | इसी के साथ साथ जो पुरानी परंपरा की मध्य या द्रुत लय की बोल-बाँट ठुमरियाँ थीं, उनकी भी विशेषताओं को नई गायन पद्धति में समाविष्ट कर लिया गया | ख्याल अंग की ठुमरियों की कुछ विशेषताएँ जैसे की सपाट तानें, स्वरों की क्रमिक बढ़त इनको भी नई बोल-बनाव ठुमरी में स्थान दिया गया | टप्पा की तानें या हरकतें और स्वर वैचित्र्य इनको भी स्थान मिला | श्रीमती लीला कारवल अपनी पुस्तक 'ठुमरी परिचय' में बताती हैं, " जो ध्येय ठुमरी अपनी नृत्य अवस्था में इशारों और शारीरिक गतियों से पूर्ण करती थी वह ध्येय इस अवस्था में ध्वनि और अन्य उपायों एवं साधनों की सहायता से प्राप्त किया जाने लगा | इस अवस्था में ठुमरी विलंबित लय में गाई जाने लगी | बोल-बनाव की अभिव्यक्ति के लिए विलंबित लय आवश्यक है" | [60]

पूर्वीय प्रदेशों के लोक संगीत की धुनों का प्रभाव भी इस शैली पर पड़ा | सामान्य अवलोकन है की इन लोक गीतों की स्वरावालियाँ आधुनिक भारतीय शास्त्रीय संगीत के काफी,खमाज और बिलावल थाटों के रागों से कुछ साम्यता रखती हैं | शुद्ध स्वरों के साथ में कोमल गंधार और निषाद के प्रयोग के कइ उदाहरण देखने को मिलते हैं | ठुमरी के गीतों पर केवल लोक गीतों की धुनों का असर ही नहीं हुआ बल्कि इस विधा के अंतर्गत कुछ लोक गीतों का आविर्भाव भी हुआ जैसे कि होली, चैती, कजरी, सावन, झूला |

भारत के स्वातंत्र्योत्तर काल में धीरे धीरे उपरोक्त परिवर्तनों के चलते ठुमरी के सांगीतिक स्वरुप में काफी बदलाव आ चूका है | मूल नृत्य सम्बंधित गान विधा के रूप में उत्पन्न हुई ठुमरी एक स्वतंत्र गान-विधा के स्वरूप में प्रस्थापित हो चुकी है | तब से लेकर प्रवर्तमान समय तक ठुमरी विधा के अंतर्गत ठुमरी, दादरा, होली, कजरी, चैती, झूला इन गीत प्रकारों का समावेश किया जाता है जिसके लिए बनारस परंपरा के कलाकारों का बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहा है | बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में इस परंपरा में बनारस घराना के शास्त्रीय संगीतकार

---

[60] कारवल, ली. (2015). *ठुमरी परिचय.* इलाहबाद: संगीत सदन प्रकाशन. पृष्ठ. 25

तथा कुछ उच्च प्रतिभाशाली 'बाईजी' (तवायफें) इनका समावेश होता था | बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से ठुमरी विधा के प्रति अन्य परंपरा के शास्त्रीय संगीतकारों और सामान्य नागरिकों का दृष्टिकोण बदलने लगा और इसका विस्तार एवं प्रचार-प्रसार केवल पूर्वीय उत्तर भारत न रहकर पूर्ण भारत में होने लगा | जीसके परिणाम स्वरुप ठुमरी विधा को संगीत जगत में एक स्वतंत्र 'उपशास्त्रीय' गान विधा का स्थान मिल गया |

बनारस परम्परा के कुछ प्रमुख कलाकार, जिन्होंने ठुमरी विधा को परिपक्व करने की प्रक्रिया में योगदान दिया, उनमें पं. बड़े रामदासजी, बड़ी मोती बाई, पं. महादेव मिश्रा, पं. हनुमान मिश्रा, श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी, श्री रसूलन बाई, पं. भोलानाथ भट्ट, श्रीमती गिरिजा देवी, श्रीमती सविता देवी, हैं |

बनारस परम्परा के कुछ प्रसिद्ध कलाकार

2.2.7.1.1 बड़े रामदास जी (ई. स. 1876- ई. स. 1960)

वाराणसी शहर के श्री बड़े रामदासजी बनारस घराने के चारों पट के गायक तथा बड़े अधिकारी कलाकार माने जात थे | गायन के उपरांत इनको नृत्य की भी शिक्षा प्राप्त थी | ध्रुपद, धमार, टप्पा, ठुमरी, दादरा एवं कजरी, चैती, होली आदि में पारंगत थे | बीसवीं शताब्दी के बनारस के कई कलाकारों को आपसे शिक्षा प्राप्त हुई | जैसे हरिशंकर मिश्रा, महादेव मिश्रा, हनुमान मिश्रा, गिरिजादेवी , सिद्धेश्वरी देवी आदि | परिणाम स्वरूप बनारस घराने की गायकी और पूरब अंग का इनकी शिष्य परंपरा में अच्छा निर्वाह हुआ |

2.2.7.1.2 विदुषी श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी (ई. स. 1908- ई.स. 1977)

बीसवीं शताब्दी के बनारस परम्परा के ठुमरी कलाकारों में श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी जी का नाम अत्यंत अधिक महत्वपूर्ण है | इनकी मौसी राजेश्वरी देवी/ राजेश्वरी बाई [61] (जो कि स्वयं बनारस की प्रसिद्ध व्यावसायिक गायिका थीं) ने इनका पालन किया | संगीत की शिक्षा प्रथम सियाजी मिश्र (सारंगीया) और उनके पश्चात बड़े रामदास जी, लाहौर के इनायत खाँ और ग्वालियर के रजब अली खाँ से प्राप्त हुई | इस शिक्षा के कारण यद्यपि आप ठुमरी-दादरा के अतिरिक्त टप्पा, ख्याल एवं भजन की प्रस्तुति में भी पारंगत हुईं, ठुमरी गायन से आपकी व्यक्तिगत पहचान बनी | **श्री पीटर मॅन्युएल पूरब अंग की विलंबित ठुमरी का शास्त्रीय पद्धति से विकास एवं परिष्करण को प्रचलित करने का श्रेय श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी को देते हैं |** [62] ठुमरी प्रस्तुतीकरण में बोल-बनाव

[61] Manuel, P. (1989). *Thumri in Historical and Stylistic Perspective.* Delhi: Motilal Banarasidass. Pg. 87

[62] Manuel, P. (1989). *Thumri in Historical and Stylistic Perspective.* Delhi: Motilal Banarasidass. Pg. 88

की क्रिया करते समय बोलों को चैनदारी और एक के बाद एक पद्धति से विलंबित ले में बनाने को इन्होंने अपनी गायकी में प्राधान्य दिया | इन्हें भारत सरकार द्वारा पद्मश्री (ई. स. 1966), रवींद्र भारती विश्व विद्यालय द्वारा Honorary D. Lit. की उपाधि (ई. स. 1973) एवं विश्व भारती विश्व विद्यालय द्वारा 'देशिकोत्तम' ये सम्मान प्राप्त हुए | इनकी प्रसिद्ध शिष्याओं में उनकी कन्या श्रीमती सविता देवी और रिता गांगुली के नाम मुख्य हैं |

2.2.7.1.3 विदूषी श्रीमती गिरिजा देवी (8 मई,19 29 - 24 अक्टूबर,20 17)

ठुमरी गायन को परिष्कृत करने तथा इसे लोकप्रिय बनाने में पद्म विभूषण विदूषी गिरिजा देवी जी का बहुत बड़ा योगदान है | **गिरिजा देवी** को सन 2016 में पद्म विभूषण एवं 1989 में भारत सरकार द्वारा कला के क्षेत्र में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया था | श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी जी और वाराणसी में जन्मीं गिरिजा देवी जी की ही विरासत है कि बीसवीं शताब्दी से लेकर आज के समय तक उच्च शिष्ट वर्ग की महिलाएँ सम्मानपूर्वक इस विधा को प्रस्तुत कर रहीं हैं | बनारस घराने के गायक व सारंगीवादक श्री सरजू प्रसाद मिश्रा तथा श्रीचंद मिश्रा जी के पास इन्होंने ख्याल, टप्पा एवं ठुमरी-दादरा जैसी विभिन्न शैलियों का ज्ञान प्राप्त किया | उपशास्त्रीय संगीत में ठुमरी-दादरा के अंतर्गत शास्त्रीय राग संगीत की गहराई और विस्तार तथा लोकगीतों की लाक्षणिकताओं का सुन्दर समन्वय आपने किया, फलत: ठुमरी विधा के साथ आपका नाम अमर रूप से सम्बंधित हो गया है | सफल प्रदर्शन के साथ-साथ आपने बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में कला संकाय में प्रशिक्षक तथा तत्पश्चात अपने सान्निध्य में कई विद्यार्थियों को तालीम देकर इस गान विधा की परंपरा को आगे बढ़ने में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है |

श्री बड़ी मोती बाई [63]

रसूलन बाई [64]

[63] Retrived on April 24, 2019 from
https://www.itcsra.org/UploadedImages/TreasurePast/TreasurePast_Banner_badi_motibai_34d426ef46.jpg

श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी [65]

सविता देवी [66]

पं. गिरिजा देवी [67]

पं. महादेव प्रसाद मिश्रा

---

[64] Retrived on April 24, 2019 from https://i0.wp.com/hindi.feminisminindia.com/wp-content/uploads/2017/11/Rasoolan_Bai_1902-1974.jpg?fit=459%2C288&ssl=1

[65] Retrived on April 24, 2019 from https://www.itcsra.org/UploadedImages/TributeMaestro/TributeMaestro_Banner_siddheswari_devi_663780e36e.jpg

[66] [Savita devi]. (n.d.). https://savitadevi.com/gallery4.html

[67] Retrived on April 24, 2019 from https://www.itcsra.org/UploadedImages/TributeMaestro/TributeMaestro_Banner_Vidushi%20Girija%20Devi_940e2d37a9.jpg

पूर्णिमा चौधरी [68]

डॉ. मंजू सुन्दरम[69]

श्रीमती शोभा गुर्टू [70]

2.2.7.2 ख्याल परंपरा के ठुमरी प्रस्तुतकर्ता

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही कुछ प्रसिद्ध ख्याल गायकों को ठुमरी की इस विधा ने अपनी ओर आकृष्ट किया और उन्होंने ठुमरी की प्रस्तुति करना प्रारंभ किया | इनमें दो प्रमुख नाम हैं – किराना घराने के उ. अब्दुल करीम खाँ और आगरा घराने के उ. फैयाज़ खाँ |

2.2.7.2.1 उ. अब्दुल करीम खाँ

[68] Retrived on April 24, 2019 from https://www.google.co.in/url?sa=i&url=https%3A%2F%2Fwww.youtube.com%2Fwatch%3Fv%3D7VJtoxY-Rs4&psig=AOvVaw3v1B1fXkWwL6mn0X0rUzw6&ust=1576013433688000&source=images&cd=vfe&ved=0CAIQjRxqFwoTCNj10e_BqeYCFQAAAAAdAAAAABAE

[69] Retrived on April 24, 2019 from https://www.google.co.in/url?sa=i&url=https%3A%2F%2Fwww.thehindu.com%2Fentertainment%2Fmusic%2Fvidushi-manju-sundaram-understanding-an-enigma%2Farticle25389848.ece&psig=AOvVaw1h23ZQrxoxN6M4w2RHHrSi&ust=1576013068323000&source=images&cd=vfe&ved=0CAIQjRxqFwoTCKixpLfAqeYCFQAAAAAdAAAAABAD

[70] Retrived on April 24, 2019 from https://upload.wikimedia.org/wikipedia/mr/4/4b/Shobhagurtu1.jpg

उ.अब्दुल करीम खाँ [71]

उ. अब्दुल करीम खाँ यद्यपि किराना घराने के ख्याल गायक थे किन्तु उन्होंने ठुमरी के अत्यंत प्रभावी प्रस्तुतिकरण किये जो कि अत्यंत लोकप्रिय हुए | उनकी ठुमरी प्रस्तुति मूलत: पूरब अंग ही की थी किन्तु उसमें साहजिक रूप से किराना ख्याल की गायकी एवं अधिकतर शिष्ट श्रृंगार रस या करुण रस की अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर होती थी | इनके द्वारा गई गयी ठुमरियों का किराना घराना के गायक-गायिकाओं में बड़ा प्रचार हुआ | उ. अब्दुल करीम खाँ के शिष्य पं. सवाई गन्धर्व, पं. सुरेशबाबू माने एवं रोशन आरा बेगम ने इनकी ठुमरी की परम्परा को बहुत खूबी से निभाया और इनके भी शिष्यों द्वारा किराना ठुमरी की यह परंपरा और आगे बढ़ी जैसे कि श्रीमती हीराबाई बडोदेकर, श्रीमती सरस्वतीबाई राणे, पं. भीमसेन जोशी, श्रीमती माणिक वर्मा, डॉ. प्रभा अत्रे इत्यादि | वर्तमान समय में किराना घराना की परंपरा में ख्याल के साथ-साथ ठुमरी की तालीम भी उ. अब्दुल करीम खाँ की ही विरासत है |

2.2.7.2.2 उ. फैयाज़ खाँ

[71] Retrived on April 24, 2019 from https://www.dilsedeshi.com/biography/ustad-abdul-karim-khan-biography-in-hindi/

उ. फैयाज़ खाँ [72]

आगरा घराने के सुप्रसिद्ध गायक उ. फैयाज़ खाँ ध्रुपद, धमार, ख्याल, ग़ज़ल, ठुमरी जैसे कई प्रकारों के निपुण कलाकार थे एवं अपने प्रस्तुतीकरण में ठुमरी-दादरा को वे अत्यंत कुशलता और प्रभावी ढंग से समाविष्ट करते थे |

2.2.7.3 पंजाब अंग

ई.स. 1 9 40 के बाद से, ठुमरी की एक और शैली लोकप्रिय हो चुकी है जिसे पंजाब अंग कहा जाता है। यह पंजाब क्षेत्र की गायकी के पूरब अंग ठुमरी में समावेश का परिणाम है। पटियाला घराने के प्रसिद्ध गायक स्व. ऊ. बड़े ग़ुलाम अली ख़ान ने पूरब ठुमरी में अपने घराने की चपल तानों को तथा अनुपम स्वर-अलंकरण को उल्लेखनीय सहजता के साथ प्रस्तुत करके इस शैली को विकसित किया | ऊ. बड़े ग़ुलाम अली खाँ और उनके भाई ऊ. बरकत अली खाँ ने इस प्रकार की ठुमरी को बहुत विकसित किया और उसे लोकप्रिय बनाया | स्वयं ऊ. बड़े ग़ुलाम अली खाँ ने पूरब ठुमरी से पंजाब अंग के अलग होने की बात का इनकार करके यह कहा है कि उनकी ठुमरी भी पूरब अंग से ही गाई जाती है, केवल उसमें कुछ सांगीतिक अलंकरणों का नए से समावेश किया गया है | [73]

पंजाब अंग ठुमरी के परिचायक हैं --

- **पटियाला घराने की गायकी में प्रयुक्त तथा टप्पा से प्रेरित तानों का प्रयोग**
- **ख़ास पंजाबी गायकी के विशिष्ट स्वर संनिवेश**

---

[72] Retrived on April 24, 2019 fom https://www.itcsra.org/TributeMaestro.aspx?Tributeid=2

[73] Manuel, P. (1989). *Thumri in Historical and Stylistic Perspective.* Delhi: Motilal Banarasidass. Pg. 89.

- **स्वरों के वैकल्पिक रूपों को साथ-साथ में गाने से उत्पन्न होनेवाला स्वर-वैचित्र्य |**

इस शैली/अंग का प्रारंभ वास्तव में उ. बड़े ग़ुलाम अली और उ. बरकत अली खाँ के पिता उ. अली बख्श खाँ द्वारा हुआ था | श्री शत्रुघ्न शुक्ल की पुस्तक में उल्लेख है कि उ. अली बख्श खाँ को ठुमरी का ज्ञान बिंदादीन महाराज और कालिका प्रसाद जी के संपर्क से हुआ था, जो कि पूरब अंग ठुमरी का था और उन्होंने उसमें पंजाबी/ पटियाला गायकी एवं टप्पा शैली का स्पर्श देकर नवीन अवतार में प्रस्तुत किया | यही कारण है कि पंजाब अंग की ठुमरी की रचनाएँ भले ही भिन्न प्रकार से प्रस्तुत की जाएँ किन्तु उनका साहित्य ज्यादातर पूर्वी उत्तर प्रदेश में प्रचलित हिंदी की उपभाषाओं में ही रहता है | [74]

ऊ. बड़े ग़ुलाम अली खाँ, ऊ. बरकत अली खाँ, ऊ. मुन्नव्वर अली खाँ, पं. जगदीश प्रसाद, उ. अब्दुल रहमान खाँ, श्रीमती लक्ष्मी शंकर, श्रीमती निर्मला अरुण, पं. जगदीश प्रसाद, पं. अजय चक्रवर्ती आदि पंजाब अंग की ठुमरी के प्रसिद्ध कलाकार हैं |

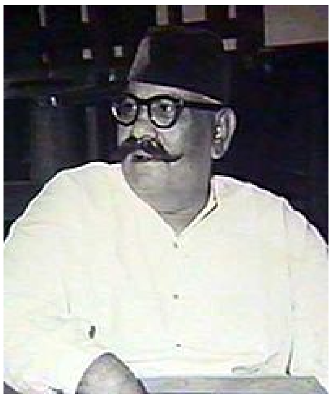

उ. बड़े ग़ुलाम अली खाँ [75]

उ. बरकत अली खाँ [76]

[74] शुक्ल श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम निदेशालय कार्यन्वय, दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ 161

[75] Retrived on April 24, 2019 from https://bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%AC%E0%A4%A1%E0%A4%BC%E0%A5%87_%E0%A4%97%E0%A4%BC%E0%A5%81%E0%A4%B2%E0%A4%BE%E0%A4%AE_%E0%A4%85%E0%A4%B2%E0%A5%80_%E0%A4%96%E0%A4%BC%E0%A4%BE%E0%A4%81

[76] Retrieved on April 24, 2019 from https://www.thefridaytimes.com/ustad-barkat-ali-khan-2/

उ. मुनव्वर अली खाँ [77]

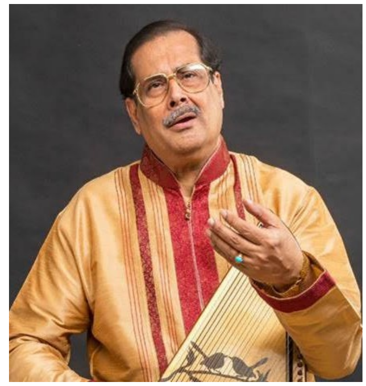

पं. अजय चक्रवर्ती [78]

निर्मला देवी / निर्मला अरुण [79]

लक्ष्मी शंकर [80]

2.3 ठुमरी की प्रवर्तमान स्थिति

ठुमरी एक 'भावप्रधान' गानविधा है [81] और उसके गीत के शब्दों में निहित भाव शब्दों के विस्तार से किया जाता है जिसे बोल-विस्तार की क्रिया कहते हैं| इसके साधन के रूप में सांगीतिक सामग्री जैसे की राग और ताल का उपयोग किया जाता है | 'बोलों के विस्तार के द्वारा भावों की अभिव्यक्ति' का स्थान इस में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है | बोल-विस्तार द्वारा भावाभिव्यक्ति के के हेतु को पूर्ण करने के लिए प्रत्यक्ष गानक्रिया में विविध

[77] Retrieved on April 24, 2019 from https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Munawar_Ali_Khan_for_wiki.jpg
[78] Retrieved on April 24, 2019 from http://www.lokvani.com/lokvani/article.php?article_id=15104
[79] Retrieved on April 24, 2019 from https://www.celebrityborn.com/biography/nirmala-devi/9512
[80] Retrieved on April 24, 2019 from http://smithsonianapa.org/now/lakshmi-shankar-a-life-journey-that-echoes-indian-musics-journey-to-the-west/
[81] शुक्ल, श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय. पृष्ठ. 276.

पद्धतियों का उपयोग किया जाता है | इसके कारण उत्पन्न होनेवाले गायकी के विशिष्ट ढंग को ही 'ठुमरी की विशिष्ट शैलियाँ/ पद्धतियाँ' कहा गया है |

2.3.1 ठुमरी की प्रत्यक्ष गानक्रिया- साधारण रूपरेखा:

ठुमरी के प्रस्तुतीकरण के समय जो प्रत्यक्ष गानक्रिया, गाय की, की जाती है उसकी रूपरेखा देखें तो कुछ गौण भेद को छोड़कर साधारणत: कुछ इस प्रकार होती है: प्रारंभिक आलाप या छेड़, स्थायी का गान एवं क्रमिक विस्तार, अंतरे का गान एवं विस्तार, स्वतन्त्र बहलावा और अंत में लग्गी विभाग |

प्रस्तुतीकरण के प्रारंभ में बंदिश के स्वरों के अनुसार सम्बंधित राग में कुछ आलाप किया जाता है | यह आलाप ख्याल के आलाप के पूर्वालाप से चपल, कम ठहराववाले होते हैं | [82] इस आलाप द्वारा ठुमरी के प्रस्तुतीकरण में प्रवेश किया जाता है | इसे बाद स्थायी का गायन करके उसका स्वरविस्तार किया जाता है | बोलों का उपयोग करके स्वर विस्तार करते समय कण, खटका, मुरकी, मींड आदि गमकों तथा स्वर-काकुओं के विशिष्ट प्रयोगों से आलापन किया जाता है | कुछ ठुमरियों में लयात्मकता आधीन बोलों का उपयोग करके लयकारी भी की जाती है किन्तु यह ध्यान रहे की यह लयकारी ख्याल और ध्रुवपद की लयकारी के समान नहीं होती | कहीं भी भावाभिव्यक्ति और रस-निष्पत्ति का लोप न हो इसे सबसे ज्यादा महत्त्व दिया जाता है | सामान्यत: स्वर-विस्तार और आलापन के प्रारंभ में स्वरों की क्रमिक बढ़त की जाती है | जैसे जैसे गायन आगे बढ़ता है वैसे वैसे विस्तार की क्रमिक रिती को छोड़कर स्वतंत्र ढंग से बोलों को स्वर और लय में सजाया जाता है | यहाँ पर भी गीत के बोलों की भावनाओं को विविध रूप से प्रदर्शित करना यही ध्येय रहता है | साथ ही साथ, कलाकार को अपनी कुशलता का प्रयोग करने का अच्छा अवसर मिलता है | अंतरे का गायन और विस्तार करने के बाद अंतिम भाग में तबले पर द्रुत लय में कहरवा ताल की 'लग्गी' बजने लगती है | कई बार लग्गी विभाग के प्रवेश के लिए त्रिताल के बोलों का प्रयोग करके दुगुन, चौगुन ऐसा क्रमिक वादन करके फिर कहरवा की द्रुत लग्गी पर आते हैं जिससे की लय एकदम बढ़कर बिगड़ने से बच जाती है और ठुमरी का मूल ताल और लग्गी में योग्य जोड़ भी मिल जाता है | यहाँ पर कलाकार स्वरों के उतार-चढाव के साथ काव्य-भाव में निमग्न होकर गायन

---

[82] कुमार, अ. (1991). *संगीत कला विहार 'ठुमरी' विशेषांक: ठुमरी गायकी और शैलियाँ.* मिरज : अखिल भारतीय गान्धर्व महाविद्यालय मंडल प्रकाशन. पृष्ठ. 112.

जारी रखता है | वर्तमान समय में प्राय: इस विभाग में मर्यादित प्रमाण में तान का काम भी देखने को मिलता है | अंत में तिहाई मोहरे के साथ प्रस्तुतीकरण समाप्त होता है | [83]

यहाँ उपरोक्त गायनक्रिया की रूपरेखा के सर्वसामान्य तरीके का वर्णन है | यह बिलकुल ही संभव है की व्यक्तिगत रूप से हर कलाकार के प्रस्तुतीकरण में थोडा-बहुत भेद हो और यह स्वाभाविक है | प्रस्तुतीकरण का स्थल, काल, समय, उद्देश्य, कलाकार की तालीम एवं व्यक्तिगत प्रतिभा और जनरूचि जैसे कई परिबल इन छोटी-बड़ी भिन्नताओं के लिए कारणस्वरूप होते हैं | किन्तु विस्तृत रूप से इसी विधि से ठुमरी का गायन होता है |

ठुमरी के प्रस्तुतीकरण में 'गीत के भावों की अभिव्यक्ति करना' इस सर्वोच्च हेतु की पूर्ती के लिए गीत के बोलों का स्वरों के माध्यम से विस्तार करने की क्रिया की जाती है | इसी क्रिया की कालांतर में दो पद्धतियाँ विकसित हुईं—'**बोल-बाँट**' और '**बोल-बनाव**' और उन्ही के आधार पर ठुमरी-गान की दो मुख्य पद्धतियाँ अस्तित्व में आईं | उन्नीसवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तथा वर्तमान समय में इन दो पद्धतियों के आधार पर ठुमरी के दो प्रमुख भेद पाए जाते हैं : 1) बोल-बाँट की ठुमरी 2) बोल-बनाव की ठुमरी |

2.3.2 बोल-बाँट की ठुमरी / पछाहीं ठुमरी / बंदिश ठुमरी :

'बाँट' शब्द खंड या विभाग करने का द्योतक है | 'बोलों का बाँट' अर्थात गीत के बोलों को लय के अनुसार बाँटना तथा स्वरों के उपयोग से उन बोलों में सौन्दर्यपूर्ण चमत्कृति उत्पन्न करना इस क्रिया को 'बोल-बाँट' कहा जाता है | इस विशेषता को लिए जिस प्रकार की ठुमरी में बोलों का विस्तार करते हैं उसे 'बोल-बाँट' की ठुमरी कहते हैं |

ठुमरी के विकास काल के दौरान लखनऊ के पश्चिम में स्थित फर्रुखाबाद, इटावा, बरेली, रामपुर, मथुरा व दिल्ली आदि क्षेत्रों की ओर इस प्रकार की ठुमरियों का प्रचार-प्रसार अधिक होने की वजह से इन्हें 'पछाहीं ठुमरी' के नाम से भी जाना जाने लगा | इन क्षेत्रों के सम्बन्ध के कारण पछाहीं ठुमरियों के स्वरपक्ष में पश्चिमी उत्तरप्रदेश, ब्रज और बुंदेलखंड के लोकगीतों की धुनों - होली, रसिया, सावन, मल्हार, लेद- का प्रभाव है | रचना और प्रदर्शन की दृष्टी से अभिजात रागसंगीत का भी प्रभाव है क्योंकि इन ठुमरियों की रचना में

---

[83] कुमार, अ. (1991), *संगीत कला विहार 'ठुमरी' विशेषांक: ठुमरी गायकी और शैलियाँ.* मिरज : अखिल भारतीय गान्धर्व महाविद्यालय मंडल प्रकाशन. पृष्ठ. 112.

परंपरागत घरानेदार गायक, सितारवादक, कथक नर्तक आदि का योगदान रहा है | मध्य लय ख्याल, तराना, सितार की गतें आदि से साम्य रखने वालीं ठुमरियाँ भी हैं | केवल कुछ गंभीर रागों को छोड़कर बहुत सारे रागों में बोल-बाँट ठुमरियाँ गाई जाती हैं | [84]

'बोल-बाँट' ठुमरी में भावाभिव्यक्ति के लिए बोलों को सुन्दर रूप से बाँटने की और स्वरों की सहायता से ताल में बोलों की लयकारी करने की क्रिया करनी होती है | इसलिए गीत की 'बंदिश' का महत्व बहुत होता है | इसलिए इन्हें 'बंदिश की ठुमरी' या 'बंदिशी ठुमरी' के नाम से भी जाना जाता है |

इस प्रकार की बंदिशें सुगठित, कलात्मक और लयबद्ध होती हैं | प्राय: त्रिताल या उसके ठेकों जैसे की अध्धा/पंजाबी त्रिताल, सितार्खानी में निबद्ध होती हैं | क्वचित कहीं रूपक, झपताल, सूलताल या आडा चौताल की बंदिशें दिख जातीं हैं लेकिन इनकी संख्या कम ही है |

उदाहरण., **ठुमरी राग-भैरवी ताल-सूलताल**[85]

स्थायी- कटत नाही सजनी, पिया बिन सगरी रैन

देखो राखी अलसाने मेरे नैन |

अन्तरा- आवो मेहरबान दरस दिखावो

कसम मिटावो अपने पिया के

बिन परत न मोहे चैन |

उपरोक्त ठुमरियों के सदृश ठुमरियों की संख्या कम ही है | बोल-बाँट की ठुमरियों को मध्य या द्रुत लय में गाते हैं |

बोल-बाँट ठुमरियों की भाषा मुख्यत: ब्रज है | विषय-वास्तु में मुख्य रूप से श्रीकृष्ण की श्रुन्गारपरक ब्रजलीलाओं का और साधारण नायिका क प्रेमाभिव्यक्ति का समावेश होता है | मध्य लय की ठुमरियों में प्राय: संयोग तथा वियोग एवं द्रुत लय की ठुमरियों में प्राय: संयोग शृंगार का वर्णन मिलता है |

काव्यात्मक चमत्कृति वाली ठुमरियाँ भी देखने को मिलती हैं, जैसे कि **घनाक्षरी** ठुमरी, **अधरबंध** ठुमरी | अधरबांध ठुमरियों के गीत के बोलों में ओष्ठ्य अक्षरों का प्रयोग वर्ज्य होत्ता है | अनुप्रास ठुमरी में बंदिश के बोल एक ही अक्षर से शुरू होते है | निम्न ठुमरी घनानंद की है जिसमें अनुप्रास का उपयोग हुआ है –

साँवलिया आज घरी पायो री आजू खेले होरी |

---

[84] शोधकर्ता द्वारा संग्रहित ठुमरी की प्रकाशित रचनाओं की सूची- परिशिष्ट 2

[85] कारवल, ली. (2015). *ठुमरी परिचय.* इलाहाबाद: संगीत सदन प्रकाशन. पृष्ठ 70.

छवि छलकत छिन छपे छपाकर

छूटत छहार पिचकारी

छैल छबीले छल नंदन ते लिन्हीं छिन छलोरी | [86]

फर्रुखाबाद के ललनपिया ऐसी ठुमरियों की रचना करने में सिद्धहस्त थे | [87]

बोल-बाँट की ठुमरी में गीत के बोलों को विभिन्न लयबाँट के अनुसार स्वरों के साथ प्रयोग करते हुए बंदिश को पहले मध्य, बाद में द्रुत लय में बढाकर गाया जाता है | इस प्रकार में विभिन्न लयकारियों सहित स्वरबद्ध बोल-विस्तार की प्रधानता रहती है | कभी कभी दुगुन, आड़लय में उपज, मुखड़े और बोलों सहित तिहाईयाँ तथा कभी कभार छोटी छोटी बोल –तानों का भी प्रयोग दिखाई देता है | नृत्य के साथ प्रयुक्त ठुमरियाँ सामान्य रूप से सीधे-सीधे सरल रूप में, स्पष्ट शब्दोच्चारण के साथ गाई जाती हैं |

बोल-बाँट ठुमरी में लयबद्धता, सुगठित बंदिशें और रागदारी के प्रभाव के कारण कई बोल-बाँट ठुमरियाँ मध्य लय ख्याल – छोटा ख्याल से बहुत निकटता रखती हैं | उनमें भेद कर पाना कठिन हो जाता है | इसलिए ऐसी कई बंदिशें कालक्रम में ठुमरी और ख्याल इन दोनों रूपों में प्रयुक्त होती चली आईं हैं | निम्न ऐसी ही रचनाओं के उदाहरण है जो ठुमरी और छोटा ख्याल इन दोनों के अंतर्गत गाई-बजाई जाती हैं |

1) राग भैरवी   ताल त्रिताल

स्थायी- कैसी ये भलाई रे कन्हाई,

पनिया भरत मोरी गगरी गिराई,

करके लराई |

अन्तरा- सनद कहे ऐसो ढीट भयो कन्हाई,

का करूँ माई नहीं मानत कन्हाई,

करत लराई | [88]

2) राग खमाज   ताल त्रिताल

---

[86] व्यास भ., *ध्रुवपद समीक्षा.* पृष्ठ 96.

[87] शुक्ल, श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय. पृष्ठ. 278.

[88] पोहनकर अ., (2009). *सफ़र ठुमरी गायकी का.* नई दिल्ही : कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स. पृष्ठ 23.

स्थायी- कोयलिया कूक सुनावे , सखी,

मोहे बिरहा सतावे,

पिया बिन कछु ना सुहावे |

निसि अंधियारी कारी बिजली चमके,

मोरा जीया डर पावे, हाँ |

अंतरा- इतनी बिनती मोरी कहियो उन्हीं से,

तुम बिन जीया घबरावे,

कैसे कहूँ मोरी आली

मोरा जीया डर पावे, हाँ | [89]

3) राग काफी ताल अध्धा त्रिताल/ पंजाबी त्रिताल

स्थायी- परत नाही चैन एरी आली,

परत नाही चैन सखी री ,

ब्याकुल पिया बिन,

निस दिन कल नाही आवे छाये कहीं,

सौतन घर भये निपट निठुर कोऊ,

हमरी ब्यथा सुनावे |

अन्तरा- घरी घरी पलछिन हूक उठत हिया बीच,

उन बिन नींद न आवे,

नयन मोरा बिन दरसन रहे तरस तरस कोऊ,

दासपिया को समझावे | [90]

बोल-बाँट ठुमरियों का वर्तमान में उतना प्रचार नहीं है जितना कि बोल-बनाव ठुमरियों का | इतिहास की दृष्टी से ये ठुमरियाँ और बोल-बाँट की तकनीक विकास के क्रम में बोल-बनाव से पहली अस्तित्व में आई थी |

---

[89] पोहनकर अ., (2009). *सफ़र ठुमरी गायकी का.* नई दिल्ही : कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स. पृष्ठ 23.

[90] श्रीमती मिताली सेनगुप्ता (कोलकाता) से वड़ोदरा यहाँ कार्यशाला के दौरान प्राप्त - दि. 29-10-2015

कुछ विद्वानों का मानना है की पुरानी 'लखनऊ' ठुमरी, जो कि नामशेष मानी जाती है, उसे बोल-बाँट की पद्धति से ही गाया जाता था | श्री पीटर मैन्युएल के अनुसार, 'लखनऊ' ठुमरी ही बोल-बाँट/ बंदिश ठुमरी के नाम से प्रसिद्ध हो गयी और कालांतर में बनारस की बोल-बनाव की ठुमरी ने इस को ढँक दिया | [91]

श्री शत्रुघ्न शुक्ल अपनी पुस्तक में ऐसा बताते हैं कि पूर्वी उत्तर भारत में बोल-बनाव की तकनीक के उपयोग से ठुमरी के स्वरुप में बदलाव आने लगे और जब बनारस के आस-पास विकसित हुई बोल-बनाव / पूरब अंग की ठुमरी का पूर्वीय प्रदेशों में प्रचार-प्रसार होने लगा, तब भी लखनऊ से पश्चिम की ओर बंदिश की ठुमरी का बोल-बाँट के साथ प्रचार था ही |

यह भी देखा गया है कि बनारस ठुमरी की परंपरा में भी बोल-बनाव के साथ साथ बोल-बाँट तकनीक का भी समन्वय किया ही गया है | कुछ परंपरागत बंदिश की ठुमरियों का प्रस्तुतीकरण दुर्लभ नहीं है | बीसवीं-इक्कीसवीं शताब्दी के ठुमरी कलाकार जैसे कि पंडिता गिरिजा देवीजी, बनारस के पंडित महादेव प्रसाद मिश्र, श्रीमती पूर्णिमा चौधरी, बनारस ही के पंडित छन्नूलाल मिश्र जैसों ने कई प्रसंगों पर बंदिश ठुमरी का प्रस्तुतीकरण किया है तथा शिष्यों को सिखाया भी है | [92]

वर्तमान समय में बंदिश ठुमरी का प्रयोग गायन की अपेक्षा नृत्य के साथ अधिक होता रहा है | लेकिन प्रस्तुतीकरण की विविधता बढ़ाने के लिए बोल-बाँट तकनीक और बंदिश ठुमरी का प्रयोग बहुत सहायक हो सकता है ऐसा मत मुंबई की श्रीमती धनाश्री पंडित-राय ने व्यक्त किया है | [93]

2.3.3 बोल बनाव की ठुमरी/ पूरब अंग की ठुमरी

बोलों के स्वरविस्तार द्वारा भावाभिव्यक्ति के हेतु को पूर्ण करने के लिए जो अन्य पद्धति ठुमरी गायन में प्रयुक्त होती है उसे **बोल-बनाव** कहते हैं | '**बोल + बनाव**' यानी कि गीत के बोलों को भावानुरूप स्वर काकू प्रयोग और स्वर संन्निवेशों से सजाना यानी कि 'बोल बनाना' | 'बनाव' शब्द सजाने, श्रृंगारित करने, अलंकृत करने का द्योतक है | बोल बनाव पद्धति में गीत के बोलों में निहित भाव को साक्षरालप्ति के माध्यम द्वारा अभिव्यंजित

[91] Manuel, P. (1989). *Thumri in Historical and Stylistic Perspective.* Delhi: Motilal Banarasidass. Pg.77.

[92] (i) बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत विभाग में कार्यरत डॉ. शारदाजी वेलंकर से हुई प्रत्यक्ष बात-चीत.
(ii) बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत विभाग में कार्यरत डॉ. रेवतीजी साकलकर से हुई प्रत्यक्ष बात-चीत.

[93] मुंबई की ठुमरी गायिका श्रीमती धनाश्रीजी पंडित-राय से उनके निवासस्थान पर हुई प्रत्यक्ष बात-चीत- दि. 25-10-2018

करने की क्रिया की जाती है | इस पद्धति कस उपयोग करके प्रस्तुत ठुमरी **'बोल बनाव' की ठुमरी** ऐसे पहचानी जाती है |

बोल बनाव ठुमरी को 'भावप्रधान' या 'गायकीप्रधान' [94] ऐसे शब्दों से भी संबोधित किया जाता है क्योंकि इसमें बंदिश की रचना या सौंदर्यपूर्ण लयकारियाँ इनकी अपेक्षा बोलो के सरल लेकिन अत्यंत भाववाही उच्चारण और आलापविस्तार का महत्व बहुत ही अधिक है |

बोल बनाव ठुमरी को '**पूरब अंग ठुमरी**' भी कहा जाता है | इसका कारण यह है की ऐतिहासिक दृष्टि से ठुमरी के विकास काल में बोल बनाव पद्धति का अधिकाधिक उपयोग और उसके द्वारा ठुमरी का विकास यह पूर्वी उत्तर प्रदेश के वाराणसी या बनारस नगर के कलाकारों और संगीतजीवियों द्वारा हुआ | यहाँ से समस्त पूर्वी उत्तर प्रदेश से बिहार, पश्चिम बंगाल तक के क्षेत्र में इस प्रकार की ठुमरी का खूब प्रचार- प्रसार हुआ | इस विकास प्रक्रिया में पूर्वी प्रांतों के लोक संगीत का इस प्रकार की ठुमरी पर गहरा प्रभाव पड़ा | इन सब वजहों से बोल-बनाव ठुमरी को '**पूरब अंग ठुमरी**' या '**बनारस ठुमरी**' के नाम से संबोधित किया जाने लगा प| आधुनिक युग में **पूरब अंग ठुमरी** और **बनारस ठुमरी** यह एक दूसरे के जैसे समानार्थी शब्द बन चुके हैं | [95]

बोल बनाव ठुमरीयों की भाषा ब्रज, भोजपुरी, अवधी, मगही इत्यादि होती है | कभी-कभी इन बोलियों के मिले जुले रूप भी होते हैं | कुछ ठुमरीयों में उर्दू भाषा के शब्दों का भी प्रयोग रहता है | संयोग और वियोग दोनों प्रकार के विषय तथा श्रृंगार के साथ करुण रस की रचनाएँ भी मिलती है |

प्राय: बोल बनाव ठुमरीओं का स्वर पक्ष पूर्वीय उत्तर भारत के लोक संगीत से प्रभावित हो ऐसा जान पड़ता है | लोक धुनों और उनसे तादात्म्य रखने वाले रागों में ज्यादातर रचनाएँ बंधी होती है | वर्तमान समय में खमाज मांड, पहाड़ी, काफी, पीलू, जंगला, भैरवी, सिंधु भैरवी, तिलंग, तिलक कामोद, देस, जोगिया, कालिंगड़ा जैसे राग तथा उनके मिश्र स्वरुप बोल बनाव की ठुमरी के लिए प्रयुक्त होते हैं |

बोल बनाव की ठुमरियाँ प्रायः दीपचंदी, जत और पंजाबी त्रिताल या अध्धा त्रिताल जैसे तालों में गाई जाती हैं | इस पद्धति में मध्य या द्रुत लय की अपेक्षा विलंबित लय अधिक अनुकूल होती है | बोलों में निहित भावों की

[94] शुक्ल, श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय. पृष्ठ 277, 281.

[95] बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत विभाग में कार्यरत डॉ. शारदाजी वेलंकर से हुई प्रत्यक्ष बात-चीत

सूक्ष्मतम और यथावकाश अभिव्यक्ति के लिए इत्मिनान और चैनदारी का आश्रय लिया जाता है , यह बोल बनाव ठुमरी की एक विशेषता है |

श्री पीटर मैन्युअल के अनुसार बोल बनाव ठुमरी की सावकाश लय उस पर आधुनिक काल में हुए विलंबित खयाल के प्रभाव का परिणाम है | प्रसिद्ध ठुमरी गायिका श्रीमती सविता देवी जी का यह मत है, "बोल बनाव/ पूरब अंग की ठुमरी में विस्तार स्वरों की क्रमिक बढ़त से धीरे धीरे करते हैं जैसे कि बड़े ख्याल में होता है केवल स्वरों को लगाने का और सजाने का तरीका ख्याल जैसा नहीं परंतु ठुमरी के योग्य होता है |" [96]

सामान्यतः बंदिशों में एक स्थाई और एक अंतरा होता है | क्वचित कहीं दो अंतरे दिखें तो वे अपवाद स्वरूप ही माने जाएंगे | इन बंदिशों की रूपरेखा स्पष्ट तो रहती है किंतु विलंबित लय में बोल विस्तार करते समय कलाकार को उस रूपरेखा में सुविधानुसार थोड़ा बहुत परिवर्तन करने का अवकाश रहता है | इस दृष्टि से बंदिशों का छोटा तथा कुछ प्रमाण में शिथिल होना विलंबित लय में आलाप क्रिया करने के लिए सहायक होता है |

पूरब अंग की ठुमरी को गाने का ढंग विशिष्ट होता है | विलंबित लय में पहले बंदिश की प्रकृति के अनुसार उसके मुख्य राग में बोल बनाव की क्रिया की जाती है | मुख्य राग की बढ़त करने के बाद आविर्भाव तिरोभाव की क्रिया द्वारा मूल राग के निकटवर्ती रागों की छाया दिखाई जाती है | इसके लिए मूल राग तथा उसके निकटवर्ती समप्रकृतिक रागों का सही-सही ज्ञान कलाकार को होना आवश्यक है | राग-मिश्रण तभी योग्य और मधुर लगेगा जब उसे योग्य प्रकार से किया गया हो | श्रीमती सविता देवी जी का यह मत है कि ठुमरी कलाकार को भी रागों का, रागदारी संगीत का संपूर्ण ज्ञान होना अति आवश्यक है क्योंकि जब तक रागों का ज्ञान नहीं होगा तब तक दो रागों को मिश्र कैसे करेंगे ? [97]

प्रत्येक राग की अपनी कुछ खास विशेष स्वर संगतियाँ रहती हैं जिनसे उस राग की विशिष्ट वातावरण निर्मिती होती है | निकटवर्ती रागों में समप्रकृतिक और समआकृतिक यह दो प्रकार होते हैं | इन दोनों प्रकारों में क्रमशः स्वरों के चलन तथा स्वरों के स्वरूप में अंतर होने से वे एक दूसरे से भिन्न बनते हैं | इसी का उपयोग करके पूरब अंग ठुमरी में मूल राग के समप्रकृतिक रागों की छाया दिखाते हुए 'तिरोभाव' किया जाता है | फिर पुनः मूल राग में प्रवेश कर 'आविर्भाव' किया जाता है | इसके अलावा अन्य रागों का मिश्रण कलाकार अपनी प्रतिभा से

[96] Baithak- Musical Seris Thumri –Pt. 02- Youtube. (n.d.).
Retrieved from http://www.youtube.com/watch2v=RT2yAb6-97A.

[97] Baithak- Musical Seris Thumri –Pt. 02- Youtube. (n.d.).
Retrieved from http://www.youtube.com/watch2v=RT2yAb6-97A

बंदिश के भाव अनुकूल समुचित रूप में करता है | '**आविर्भाव-तिरोभाव**' करने के लिए '**षडज-संक्रमण**'/ '**षडज-चालन**' तथा '**स्वर-सन्निवेश परिवर्तन**' या/और '**स्वर परिवर्तन**' यह विधियाँ प्रयुक्त होती है | [98]

राग में मूल 'सा' के अतिरिक्त किसी अन्य स्वर पर थोड़ी देर के लिए 'सा' की स्थिति मान लेने की प्रक्रिया को '**षडज-संक्रमण**' या '**षडज-चालन**' कहते हैं | राग के मूल सा के स्थान पर राग के किसी अन्य स्वर पर सामान लेते हैं लेकिन मूल राग की स्वरावलियों की स्थिति में परिवर्तन नहीं करते | इससे नए सा के संदर्भ में पुरानी स्वरावलियाँ मूल राग से हटकर किसी नए राग की सुनाई पड़ने लगती है | इससे नए राग का आभास निर्माण होता है | पुनः मूल सा पर आ जाने से उस नए राग की छाया हटकर मूल राग में वापस आ जाते हैं |

उदाहरण:

1)

राग भैरवी   नी़   सा   रे   ग   म   प   ध   नी   सां

↓

राग काफी   सा   रे   ग   म   प   ध   नी   सां [99]

2) राग भूपाली- सा रे ग प ध सां रे → रे पर षडज संक्रमण

↓ ↓

नि सा रे म प नि सां ← राग मेघ

प्रत्येक राग केवल उसके आरोही अवरोही स्वरों से नहीं बल्कि उन स्वरों के विशिष्ट प्रयोग से बनता है | राग का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए स्वरों के विशिष्ट लगाव तथा विशिष्ट स्वर समूहों के प्रयोग की आवश्यकता रहती है | स्वर समूहों के प्रयोग से उस राग के विशिष्ट वातावरण की निर्मिति होती है तथा तभी वह राग बनता है | यदि किसी राग के स्वरों में परिवर्तन ना कर के केवल स्वर समूहों में परिवर्तन किया जाए तब भी अन्य राग की छाया दिखाई जा सकती है | इस बात का उपयोग करके ठुमरी में अन्य राग का तिरोभाव तथा पुनः मूल राग का आविर्भाव किया जाता है | इसे **स्वर-सन्निवेश परिवर्तन** कहते हैं |

उदाहरण:

---

[98] शुक्ल, श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय, दिल्ली यूनिवर्सिटी. पृष्ठ 283.

[99] शुक्ल, श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय, दिल्ली यूनिवर्सिटी. पृष्ठ 284.

मूल राग खमाज का नंद तथा बिहाग रागों में तिरोभाव और बाद में पुनः खमाज में आविर्भाव [100]

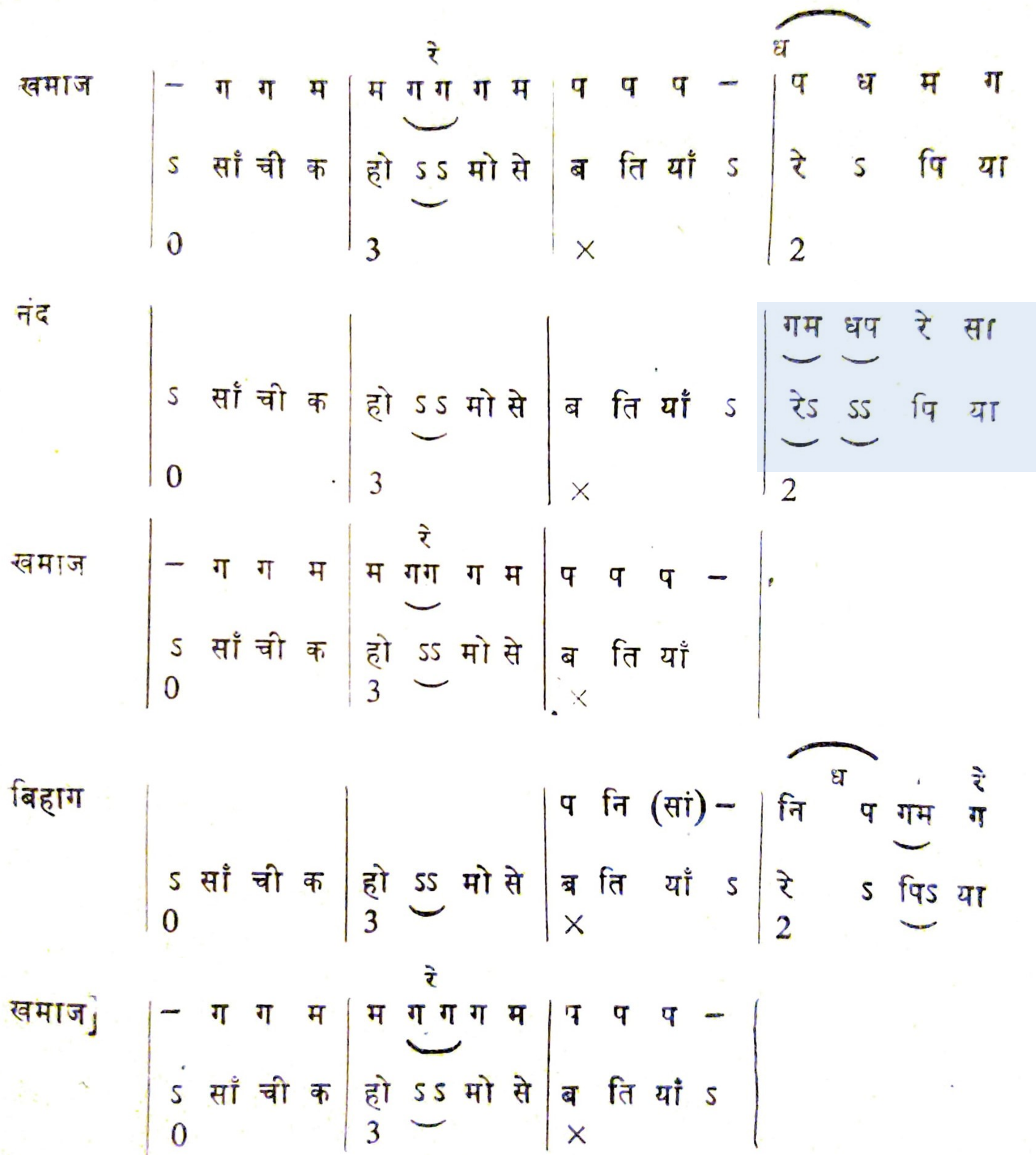

खमाज	– ग ग म	म (रे)गग ग म	प प प –	प (ध) ध म ग
	ऽ साँ ची क	हो ऽऽ मो से	ब ति याँ ऽ	रे ऽ पि या
	0	3	×	2
नंद				गम धप रे सा
	ऽ साँ ची क	हो ऽऽ मो से	ब ति याँ ऽ	रेऽ ऽऽ पि या
	0	3	×	2
खमाज	– ग ग म	म (रे)गग ग म	प प प –	
	ऽ साँ ची क	हो ऽऽ मो से	ब ति याँ	
	0	3	×	
बिहाग			प नि (सां) –	नि (ध) प गम (रे)ग
	ऽ साँ ची क	हो ऽऽ मो से	ब ति याँ ऽ	रे ऽ पिऽ या
	0	3	×	2
खमाज	– ग ग म	म (रे)गग ग म	प प प –	
	ऽ साँ ची क	हो ऽऽ मो से	ब ति याँ ऽ	
	0	3	×	

100 शुक्ल, श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ.* नई दिल्ली : हिन्दी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय, दिल्ली यूनिवर्सिटी. पृष्ठ 285.

अन्य राग के मिश्रण के लिए मूल राग में लगने वाले स्वरों के स्वरूपों को यथा योग्य स्थान पर बदलकर उन्हें यथा योग्य प्रमाण में प्रयुक्त करते हैं | राग के स्वरों के शुद्ध कोमल तीव्र रूपों में फेरबदल करने पर किसी दूसरे राग की छाया दिखा सकते हैं | इस प्रक्रिया में प्रायः मूल राग तथा जिस राग का तिरोभाव किया जाता है उस राग के कोई समान स्वर को लेकर वहाँ से स्वरों का रूप बदलकर राग का तिरोभाव करने की शुरुआत करते हैं | उसी समान स्वर की सहायता से मूल राग में पुनः प्रवेश कर राग का आविर्भाव करते हैं |

उदाहरण:

राग खमाज में रचना

9	10	11	12	13	14	15	16	1	2	3	4	5	6	7	8
—	ग	ग	म	म	(रे)गग	ग	म	प	प	प	—	(ध)प	ध	म	ग
ऽ	साँ	ची	क	हो	ऽऽ	मो	से	ब	ति	याँ	ऽ	रे	ऽ	पि	या
0				3				x				2			

—	ग	ग	म	म	(रे)गग	ग	म	प	प	प	—	म̍	प	ग	(म)ग
ऽ	साँ	ची	क	हो	ऽऽ	मो	से	ब	ति	याँ	ऽ	रे	ऽ	पि	या
0				3				x				2			

(ग)रे	सा	गग	म	म	(रे)गग	ग	म	प	प	प	—	
ऽ	ऽ	साँची	क	हो	ऽऽ	मो	से	ब	ति	याँ	ऽ	2
0				3				x				

शुद्ध म के स्थान पर तीव्र म 'म̍' प्रयोग करके राग मारू बिहाग में तिरोभाव और फिर से शुद्ध म के प्रयोग से खमाज में आविर्भावबोल बनाव करते समय भावाभिव्यंजक ध्वनिविकार जैसे दर्द, हूक, पुकार आदि का प्रयोग

भी विशिष्ट रूप से करते हैं | शास्त्रीय दृष्टि से दर्द और पुकार यह ध्वनिविकार 'काकू' के अंतर्गत आते हैं | [101] गीत के बोलों में निहित भावों की प्रभावशाली अभिव्यक्ति में इनका प्रयोग बहुत ही सहायकारी होता है | गायन में इनका प्रयोग ज्यादातर 'अरे', 'रे', 'हां री', 'अरी', 'एरी', 'हो', 'हाय' जैसे संबोधनात्मक या ह्रदयोत्पन्न उत्स्फूर्त उदगारों के साथ किया जाता है | ऐसे उदगारों का उपयोग लोकगीतों में बहुत ही प्रचुरता से होता है | जिससे बोल बनाव या पूरब अंग की ठुमरी पर लोकगीतों के प्रभाव का एक प्रमाण मिलता है |

पूरब अंग ठुमरी में प्रयुक्त साहित्य की भाषा और प्रादेशिक परिबलों को आधार रखते हुए श्री शत्रुघ्न शुक्ला इसकी दो शाखाएँ मानते हैं: (1)लखनवी ठुमरी (2) बनारस ठुमरी | अपनी पुस्तक में इन्होने इन दोनों शाखाओं में तुलना करके उनमें कुछ सूक्ष्म भेद बताए हैं, जैसे कि गीत के साहित्य की भाषा में क्रमश: अवधी,उर्दू और भोजपुरी, मगही जैसी क्षेत्रीय बोलियों का प्रभाव; नवाबी और पूर्वीय प्रादेशिक संस्कृतियों का प्रभाव; लखनऊ की गायनशैली पर ग़ज़ल,टप्पा का तथा बनारस की गायनशैली पर पूर्वीय लोक संगीत का प्रभाव आदि | [102]

इसी के साथ यह भी कहा गया है कि वर्तमान युग में बनारसी शैली की लोकप्रियता के चलते लखनऊ की शैली का बनारसी शैली में विलीनीकरण हो गया है |

पूरब अंग की बोल-बनाव ठुमरी को और विभाजित करने का यह दृष्टिकोण शोधकर्ता के विचार से अनावश्यक लगता है |

(1) आज पूरब अंग की ठुमरी में बनारसी और लखनऊ ऐसी विशिष्ट शैलियों का कोई पृथक अस्तित्व नहीं है | [103]लखनऊ ठुमरी की जो विशेषताएँ बताई गई हैं, वे सभी पूरब अंग की ठुमरी में किसी न किसी रूप में पाई जाती हैं |

---

[101] शुक्ल, श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ*. नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय, दिल्ली यूनिवर्सिटी. पृष्ठ 286.

[102] शुक्ल, श. (1991). *ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियाँ*. नई दिल्ही : हिन्दी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय, दिल्ली यूनिवर्सिटी. पृष्ठ 293.

[103] श्री शुभा जोशी जी से मुंबई में उनके निवास स्थान पर हुई प्रत्यक्ष बातचीत के अनुसार.दि. 25/10/2018

(2) ठुमरी के विकास क्रम को देखें तो प्रतीत होता है कि बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में ठुमरी की बोल-बाँट प्रधान गान शैली और छोटे ख्याल सदृश गान शैली का स्थान बोल-बनाव प्रधान गायकी ले रही थी तब इस नई पद्धति की ठुमरी-गायकी को 'पूरब अंग' या 'बनारसी' ठुमरी ऐसे नाम मिले | इसी मोड़ से ठुमरी का नृत्य से स्वतंत्र गायकी के रूप में विकास होने लगा | उससे पहले के दस्तावेजों में ठुमरी को 'लखनऊ' से ही सम्बंधित बताया गया है और उस नृत्य से ही सबंधित ऐसा उसका स्वरुप था | इसको भी 'लखनऊ' ठुमरी कहते थे |
इस अवस्था में यदि पूरब अंग की दो शाखाओं के रूप में लखनऊ और बनारस ऐसे दो भेद किये जाएँ तो संभ्रम उत्पन्न होता है | अत: इस परिस्थिति में पूरब अंग को लखनऊ एवं बनारस ऐसे अधिक अंगों में विभाजित न करना ही शोधकर्ता को उचित प्रतीत होता है |

2.4 रस के भरे तोरे नैन: एक तुलनात्मक अध्ययन

'रस के भरे तोरे नैन' एक बहुत प्रसिद्ध ठुमरी रचना है | यह पारंपरिक रूप से राग भैरवी में गाई जाती है, लेकिन ताल, लय/गति, विस्तार शैली आदि के सन्दर्भ में, विविध कलाकारों के इस ठुमरी के उपलब्ध विभिन्न रिकॉर्डिंग में विविधता पाई जाती है | ये रिकॉर्डिंग अलग-अलग कलाकारों की हैं जो 20 वीं सदी से शुरू होकर वर्तमान समय यानी इक्कीसवीं सदी तक अलग-अलग समय की अवधि में सक्रिय रहे हैं | यहाँ, इस प्रसिद्ध ठुमरी के विभिन्न समय काल के चुनिंदा कलाकारों के प्रदर्शन का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है | सांगीतिक और साथ ही प्रदर्शन के पहलुओं में अंतर पर ध्यान देना रसप्रद होगा, यदि कोई हो, तो | हम आगे देखेंगे कि क्या यह विश्लेषण कुछ बदलते रुझान दिखा सकता है, हालाँकि यह केवल झलक दे सकता है क्योंकि यह एक विशेष ठुमरी का विशिष्ट मामला है न कि पूरी शैली का |

अध्ययन के लिए, यहाँ प्रदर्शनों के नमूनों को ऑनलाइन ऑडियो-वीडियो साझाकरण मंच https://www.youtube.com से साझा रिकॉर्डिंग के रूप में प्राप्त किया गया है | संदर्भ उद्देश्य के लिए प्रत्येक रिकॉर्डिंग के URL प्रदान किए गए हैं |

प्रदर्शन की गति/ लय के निर्धारण के लिए, 'बीपीएम' संख्या (बीपीएम) का उपयोग किया गया है जो Apple AppStore पर उपलब्ध Apple सॉफ्टवेयर 'iTablaPro' पर प्रदर्शित किया जाता है |

अधिकांश रिकॉर्डिंग उत्साही संगीत प्रेमियों द्वारा ऑनलाइन अपलोड की जाती हैं अत: रिकॉर्डिंग की सही प्रदर्शन की तारीख उपलब्ध नहीं हैं| अनुमानित रिलीज़ समय अवधि को 'अनुमानित' समय अवधि के रूप में दिया गया है |

अब हम एक-एक करके रिकॉर्डिंग पर नज़र डालें:

1) गौहर जान

स्रोत: https://www.youtube.com/watch?v=1HzvSS9mT4k

अवधि: 3:35 मिनट

राग: भैरवी

ताल: दादरा

गति: 163 बीपीएम के साथ शुरू होता है; धीरे-धीरे अंत तक 169-170 बीपीएम तक बढ़ जाता है |

संगत: तानपुरा, तबला, हारमोनियम

यह न केवल ठुमरी के इतिहास में, बल्कि भारत में साउंड रिकॉर्डिंग के इतिहास में सबसे शुरुआती रिकॉर्डिंग में से एक है | ई.स. 1902 में, कलकत्ता में, लंदन की ग्रामोफोन कंपनी ने भारतीय संगीत के स्थानीय कलाकारों को रिकॉर्ड करने के लिए दो एजेंट भेजे [104] और कलकत्ता की गौहर जान भारतीय संगीत के पहले रिकॉर्ड की गयी कलाकारों में से एक हैं | यह रिकॉर्डिंग ई.स. 1902-1905 के बीच बाजार में कहीं जारी की गई थी| रिकॉर्डिंग

[104] Manuel, P. (1989). *Thumri in its Stylistic and Historical Perspective*. Delhi: Motilal Banarasidas. Pg.

की गुणवत्ता खराब है और इसलिए कुछ हिस्से पूरी तरह से समझ में नहीं आते हैं| लेकिन प्रमुख विशेषताओं की पहचान की जा सकती है|

इस रचना के पीछे एक कहानी यह है कि यह ठुमरी बनारस के प्रसिद्ध उस्ताद मौजुद्दीन खान के लिए गौहर जान द्वारा बनाई गई है | लेकिन कुछ लोग सोचते हैं कि यह सिर्फ एक कहानी है और इसका कोई उचित प्रमाण नहीं है | [105]

* शैलीगत दृष्टी से यह एक ठुमरी की तुलना में दादरा की तरह अधिक लग रही है | बनारस की विशिष्ट बोल-बनाव ठुमरी की धीमी गति के विपरीत, यह तेजी से गाई गयी है | पश्चात के वर्षों के लगभग सभी कलाकारों ने इस ठुमरी को ठहरावपूर्ण और बोल-बनाव के साथ धीमी 'ठुमरी' शैली में प्रस्तुत किया है|

* 'कहन' का भरपूर उपयोग (संगीत के स्वरों का प्रयोग करके गीत के शब्दों को इस तरह से बोलना जैसे कि किसी बात के दौरान बताना) और 'अ री', 'अरे हाँ' जैसे शब्दों का बार-बार इस्तेमाल करना एक ऐसी शैली को दर्शाता है जो अत्यधिक भावुक है एवं गीत के शब्दों में निहित भावनाओं के प्रति अभिव्यक्तिशील है, जो कि इस शैली का मुख्य उद्देश्य है | उदाहरण के लिए: 0:32, 0:49, 1:11, 2:14, 2:33, 2:47 आदि में|

* अलग-अलग प्रासंगिक पद्य का उपयोग, उर्दू 'शेर' का हो सकता है, सुना जाता है | हालाँकि स्पष्टता का अभाव है, इसलिए हम मुखड़ा के 'स्थायी' हिस्से के बाद गाये गए सटीक शब्दों की पहचान नहीं कर सकते हैं|

* प्रदर्शन के दौरान कुछ जलद गति की तानों का उपयोग भी पाया जाता है, जो गौहर जान के कड़े प्रशिक्षण एवं तान-अंग पर दक्षता का संकेत देता है | जैसे 1:55, 2:02, 2:55 आदि में |

---

[105] Baithak Series : Thumri Part 2
Retrieved from
https://www.youtube.com/watch?v=RT2yAb6-g7A&t=1669s
Published on Jun 5, 2015 by DoordarshanNational

* खराब गुणवत्ता के कारण तेज गति वाले 'लग्गी' खंड की शुरुआत स्पष्ट रूप से सुनाई नहीं देती है | लेकिन अंत में, जिसमें गौहर जान ने कहा कि " My name is Gauhar Jaan ", प्रदर्शन को समाप्त करने से पहले 3: 24-3: 25 के आसपास हम लग्गी जैसे कुछ तबले के ध्वनि को हल्के से सुन सकते हैं |

* यह भी संभव है कि उस समय 78 आरपीएम रिकॉर्ड की सीमित अवधि के कारण, कलाकार ने प्रस्तुति की लंबाई कम रखने के लिए चुना हो और इसलिए धीमी ठुमरी शैली के बजाय दादरा की गति का चयन किया गया हो |

* यह रिकॉर्डिंग प्रारंभिक बोल-बनाव पद्धति का एक उदाहरण है जो 19 वीं शताब्दी की बोल-बाँट पद्धतिके पश्चात विकसित हुई थी और ठुमरी-दादरा में प्रसिद्ध बनारस बोल-बनाव शैली की अग्रदूत थी |

2) विदुषी सिद्धेश्वरी देवी (1908-1977)

स्रोत: https://www.youtube.com/watch?v=IoC_k8n_7jE

अवधि: 6:02 मिनट

राग: भैरवी

ताल: कहरवा

गति: 76 बीपीएम के साथ शुरू होता है; धीरे-धीरे बढ़कर 80 बीपीएम हो जाता है और लग्गी सेक्शन 240 बीपीएम के आसपास शुरू होता है जो धीरे-धीरे बढ़कर 268-269 बीपीएम हो जाता है |

संगत: तानपुरा, तबला, हारमोनियम | रिकॉर्डिंग की गुणवत्ता के कारण हारमोनियम स्पष्ट रूप से नहीं सुना जाता है |

स्थाई: रस के भरे तोरे नैन

आजा साँवरिया तोहे गरवा लगा लूँ

अंतरा: गौहर प्यारी तोपे बली बली जान रे

मोरा जिया तरसे रे

* इस प्रदर्शन की अनुमानित समय 1940-1960 के बीच कहीं है |

* पहला सम स्वर मध्य 'म' पर है, जो प्रदर्शन के दौरान लगभग समान रहता है | यह काफी दिलचस्प है क्योंकि प्रसिद्ध कलाकारों के अन्य उपलब्ध प्रदर्शनों में से कोई भी मध्य म पर उनका सम नहीं है | तो इस तरह से, यह एक असाधारण मामला है | यह कलाकार की बहुमुखी प्रतिभा और क्षमता , कलाकार की निपुणता और विशेषज्ञता जो कि एक रचना को एक अलग और पूरी तरह से आश्वस्त तरीके से प्रस्तुत करना है, भी दर्शाता है |

* हालाँकि कलाकार द्वारा यहाँ चुना गया ताल, कहरवा है, यह स्पष्ट है कि गति तेज गति वाला या दादरा जैसा नहीं है | प्रदर्शन मध्यम गति से शुरू होता है या मध्य कहरवा है और फिर धीरे-धीरे प्रदर्शन में लय बढ़ती जाती है |

* बनारस / पूरब अंग शैली की अत्यधिक अभिव्यंजक आवाज के साथ पुकार और काकू-प्रयोग (आवाज में बदलाव) का उपयोग | जैसे 0:27 और 1:20 के बीच का हिस्सा | ऐसे कई मार्ग हैं जहाँ ये विशेषताएँ देखी जाती हैं | 3:37, 3:45 से 4:08 |

* 'ए री', 'अरे', 'हाँ ' आदि जैसे भावनात्मक शब्दों का बार-बार उपयोग |

* विशिष्ट बोल-बनाव तकनीक को बोलों विस्तृत करने और बोलों का अर्थ बताने के लिए नियोजित किया गया है | विस्तार का हिस्सा और इसकी धीमी गति बड़ा ख्याल के कुछ प्रभाव का सुझाव देते हैं |

* कुछ छोटी तानें भी विस्तार के दौरान मौजूद हैं | जैसे 3:17, 3:30 पर | लेकिन सामान्य तौर पर तान पर ज्यादा जोर नहीं दिया जाता है, इसके बजाय बोल-बनाव तकनीक का उपयोग करते हुए बोलों बनाने की विस्तृत और भावपूर्ण किस्में पाई जाती हैं | लग्गी भाग के दौरान, मुखड़ा विविध प्रकार से गाई जाती है |

* यह पूरी तरह से विकसित रूप में परिपक्क बोल-बनाव ठुमरी का एक अच्छा उदाहरण है |

3) रसूलन बाई (1902-1974)

स्रोत: https://www.youtube.com/watch?v=Uzyn4lgGWXg

अवधि: 10:41 मिनट

राग: भैरवी

ताल: दीपचंदी

गति : प्रदर्शन 60 बीपीएम पर शुरू होता है | यह देखा गया है कि प्रदर्शन के दौरान गति में थोड़ी अस्थिरता दिखाई देती है जो कि लाइव संगत के दौरान एक आम घटना है | लग्गी सेक्शन लगभग 200 बीपीएम पर त्रिताल टुकड़ों के साथ शुरू होता है और फिर एक बढ़ती हुई गति में कहरवा लग्गी तक जारी रहता है जो लगभग 255-260 बीपीएम पर समाप्त होता है |

संगत: तानपुर, तबला, सारंगी |

* प्रदर्शन में रचना की केवल स्थाई का प्रतिपादन किया गया है |

स्थाई: रस के भरे तोरे नैन

आजा साँवरिया तोहे गरवा लगा लूँ

* यह बनारस / पूरब अंग के ठेठ धीमे बोल-बनाव ठुमरी का उदाहरण है |

* इस प्रदर्शन की अनुमानित समय 1940-1960 के बीच कहीं है |

* कलाकार रसूलन बाई 20 वीं सदी के मध्य की प्रसिद्ध ठुमरी-दादरा गायिका थीं, विदुषी सिद्धेश्वरीदेवी की समकालीन, दोनों को 20 वीं शताब्दी के मध्य में बनारस ठुमरी के बेहतरीन कलाकारों में माना जाता है |

* बनारस / पूरब अंग की सभी महत्वपूर्ण विशेषताएँ इस पूर्णता में स्पष्ट हैं | एक अत्यधिक अभिव्यंजक भावपूर्ण आवाज़, पुकार, काकू-प्रयाग, कहन का भरपूर उपयोग देखा जाता है | बोलों के विस्तार और भाव अभिव्यक्ति के लिए बोल-बनाव की तकनीक प्रयुक्त है | धीमी गति से चलने वाली दीपचंदी ताल विस्तृत बोल-बनाव में बहुत उपयोगी है | यहाँ हम बोलों का क्रमश: उत्तरोत्तर स्वरों के उपयोग से विस्तार का अवलोकन कर सकते हैं, जो बड़ा ख्याल के प्रभाव को दर्शाता है |

* 'ए री', 'अरे', 'हाँ' आदि जैसे भावनात्मक शब्दों का बार-बार उपयोग |

* कुछ छोटी तानें भी विस्तार के दौरान मौजूद हैं | जैसे 6:40, 6:50 पर | लेकिन सामान्य तौर पर तान पर ज्यादा जोर नहीं दिया जाता है, इसके बजाय बोल-बानव तकनीक का उपयोग करते हुए पाठ विस्तार की अभिव्यंजक और भावनात्मक किस्में फॉन डी हैं | लग्गी भाग के दौरान, मुखड़ा की कई किस्में गाई जाती है |

* यह बनारस / पूरब अंग के परिपक्व विकसित बोल-बानव ठुमरी का भी उदाहरण है |

4) पंडिता गिरिजा देवी (1929-2017)

स्रोत: https://www.youtube.com/watch?v=HJS6Em8y3VU

अवधि: 19:45 मिनट

राग: भैरवी

ताल: दीपचंदी

गति: प्रदर्शन लगभग 50 बीपीएम पर शुरू होता है | लग्गी लगभग 100 बीपीएम त्रिताल के टुकड़े से शुरू होती है और फिर लगभग 120 बीपीएम पर शुरू होने वाली कहरवा लग्गी द्वारा आगे बढ़ाई जाती है और फिर लगभग 146-148 बीपीएम तक बढ़ जाती है |

संगत: तानपुरा, तबला, सारंगी |

स्थाई: रस के भरे तोरे नैन

आजा साँवरिया तोहे गरवा लगा लूँ

अंतरा: दिन नाही चैन रैन नाहि निंदिया

नहि परत मैं का चैन

* इस रिकॉर्डिंग का अनुमानित समय 1970 या 1980 के दशक के अंत तक माना जाता है |

* यह प्रदर्शन 20 वीं सदी के अंत के बनारस घराने की सबसे प्रशंसित और उच्च सम्मानित महिला ठुमरी-दादरा कलाकार- पद्म विभूषण श्रीमति गिरिजा देवी का है |

* यह प्रदर्शन एक ऐसे समय का प्रतिनिधित्व करता है जब बनारस ठुमरी पहले से ही स्थापित थी और यह ख्याल शैली की धीमी गति से विस्तार से बहुत प्रभावित थी | ठुमरी गायकों ने बड़ी चतुराई से कुछ ख्याली तकनीकों को शामिल किया, जो कि ठुमरी के भाव के गुणों और शैली की अत्यधिक अभिव्यक्ति के साथ समझौता किए बिना थी |

* बनारस ठुमरी की सभी मुख्य विशेषताएँ यहाँ पाई जा सकती हैं | धीमी गति से दीपचंदी विस्तृत बोल-बनाव के लिए बहुत जगह प्रदान करती है | पुकार, काकू-प्रयाग, अत्यधिक अभिव्यंजक और भावनात्मक आवाज, भावनात्मक शब्द जैसे 'एरी', 'अरे', 'अरे हाँ' आदि का स्वतंत्र रूप से उपयोग किया जाता है | उसी समय, हम

चतुराई से इस्तेमाल किए गए ताने की बढ़ी हुई मात्रा को वाक्यांशों या तानों की तरह देख सकते हैं, बस सही अनुपात और स्थिति में |

* सामान्य तौर पर, यह 20 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आधुनिक बोल-बनाव ठुमरी का उदाहरण है, जो अपने विशिष्ट रूप में वर्तमान तिथि तक है, चतुराई से शामिल खयाल शैली के अलंकरण उन्हें ठुमरी की प्रकृति के लिए उपयुक्त बनाते हैं |

5) श्रीमती सुनंदा शर्मा

स्रोत: https://www.youtube.com/watch?v=hlaT4iCyEC0

अवधि: 7:49 मिनट

राग: भैरवी

ताल: पंजाबी त्रिताल

गति: लगभग 117 बीपीएम के साथ शुरू होता है | प्रदर्शन के दौरान गति ज्यादा नहीं बदलता है |

संगत: तानपुरा, तबला, हारमोनियम |

स्थाई: रस के भरे तोरे नैन

आ जा साँवरिया तोहे गरवा लगा लूँ

अंतरा: दीन नाही चैन रैन नाहि निंदिया

कासे कहूँ जी के बैन

* यह प्रदर्शन 15 जुलाई, 2018 को प्रकाशित हुआ है | इसलिए हम कह सकते हैं कि प्रदर्शन का वास्तविक समय जुलाई 15, 2018 की बाद में नहीं है | यह 2010-2018 के बीच कहीं भी हो सकता है | तो यह 21 वीं सदी में बनारसी ठुमरी का एक उदाहरण है |

* प्रस्तुत करने वाली कलाकार सुनंदा शर्मा हैं जो स्वर्गीय श्रीमती गिरिजा देवीजी की प्रसिद्ध शिष्या हैं | वह 21 वीं सदी के ठुमरी-दादरा कलाकारों में एक अग्रणी नाम है |

* यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस पारंपरिक रचना के लिए पंजाबी त्रिताल का उपयोग किया गया है | उन्होंने खुद इस ठुमरी को एक अन्य प्रदर्शन में विलम्बित दीपचंदी में गाया है | यहाँ वह पंजाबी ताल का प्रयोग करना चुनती है | हो सकता है कि इस तरह के निर्णयों या प्रयोग करने के पीछे आसपास का वातावरण या तत्कालीन सभा के श्रोतागणों की धीमी गति के प्रति अरूचि जैसे कारण रहें हों |

* एक और महत्वपूर्ण अंतर 'लग्गी' भाग का पूर्ण अभाव है | फिर से, यह सामान्य बात नहीं है क्योंकि परंपरागत रूप से 'लग्गी' भाग हमेशा प्रदर्शन का अभिन्न अंग रहता है |

* बोल-बानव, पुकार, स्वर संयोजनों आदि का उपयोग संगीत के माध्यम से शब्दों में निहित भाव को विस्तृत करने लिए किया जाता है |

तो, मूल रूप से यह एक विशेष मामला है, जहां कलाकार ने संरचना के साथ प्रयोग करते हुए पाठ-विस्तार का एक पारंपरिक तरीका अपनाया है और एक अलग ताल में गाते हुए 'लग्गी' भाग को प्रस्तुत ही न करने का निर्णय किया है |

निष्कर्ष

पारंपरिक बनारस / पूरब अंग ठुमरी 'रस के भरे तोरे नैन'के उपर्युक्त उदाहरणों की जांच करने के बाद, हम कुछ सामान्य विशेषताएँ देख सकते हैं और प्रत्येक संस्करण एक या दूसरे तरीके से अलग है |

शैलीगत रूप से प्रत्येक संस्करण विस्तार के लिए बोल-बनाव विधि का अनुसरण करता है, लेकिन बोल-बनाव स्वयं समय के साथ विकसित, परिपक्क और स्थापित होता हुआ प्रतीत होता है |

विभिन्न ताल का उपयोग विशेष रूप से विशिष्ट है | इससे रचना में निहित लचीलापन एवं उसके विस्तृत क्षेत्र का पता चलता है |

लय में तुलनात्मक कमी भी स्पष्ट है |

स्थायी के शब्द एक समान रहते हैं लेकिन अंतरा के शब्दों के अलग-अलग संस्करण हैं | सिद्धेश्वरी देवी के संस्करण में गौहर जान का नाम 'गौहर प्यारी'शामिल है, गिरिजा देवी और सुनंदा शर्मा के संस्करणों में अंतरा में मामूली अंतर है | रसूलन बाई अंतरा को बिल्कुल नहीं गाती हैं |

इस प्रकार उपरोक्त सभी उदाहरण प्रसिद्ध बनारस ठुमरी के विकास के क्रम को इंगित करते हैं | इस विश्लेषण से यह भी पता चलता है कि ठुमरी-दादरा की शैली अपनी मूल विशेषताओं को खोए बिना प्रदर्शनों के दौरान प्रयोगों को शामिल कर रही है जो अंततः शैली के विकास में योगदान कर सकती है |

****